प्रेरक - प्रसंग

—श्रीसुदर्शनसिंह 'चक्र'

प्रेरक-प्रसंग

सुदर्शन सिंह 'चक्र'

●

●

प्रकाशक

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा-संस्थान,
मथुरा–२८१००१

●

मुद्रक :
राष्ट्रीय प्रेस,
डैम्पियर नगर, मथुरा।

●

प्रथमावृत्ति : सन् १९८० ई०
संस्करण : २२०० मूल्य : १)५०

"यह पुस्तक भारत सरकार द्वारा रियायती मूल्यपर उपलब्ध किये गये कागजपर मुद्रित-प्रकाशित है।"

विषय-सूची

—×—

आदि प्रश्न

"यह कौन है जो यहाँ कमल-कर्णिकापर बैठा 'यह मैं हूँ' इस प्रकार अनुभव कर रहा है?"

'यह अनन्त असीम जलराशि– इसमें यह कमल कहाँसे आया?'

'इस जलके नीचे क्या है, जिसपर यह कमल स्थित है?'

केवल एक ज्योतिर्मय पद्म-पुष्प—न दिशाएँ, न नक्षत्र और न अन्य कोई दृश्य। अनन्त असीम उत्ताल तरंगायित प्रलय-पयोधि और उसके मध्य केवल एक पद्म-पुष्प। उस पद्ममें भी कोई पत्र नहीं।

ज्योतिर्मय-लोक पद्मकी कर्णिकापर पता नहीं कैसे और कहाँसे एक रक्तवर्ण, चतुर्मुख पुरुष प्रगट होगया था। वह सब ओर अपने नेत्र फैला-फैलाकर देख रहा था; किन्तु दृश्य कुछ हो तो दीखे।

सृष्टिका वह आदि कर्ता—त्रिगुणात्मिका प्रकृति क्षुब्ध हो चुकी थी। साम्यावस्थासे असाम्यके जागरणके मंगल पद प्रकट हो चुके थे। त्रिगुणात्मक सृष्टिके स्रष्टाके मनमें प्रश्न-त्रय प्राय: एक साथ उठे—

'मैं कौन हूँ?'

'मेरा दृश्य क्या है?'

'मैं और मेरे दृश्यका अधिष्ठान क्या है ?'

प्रश्नका यह शाश्वत रूप और यह सृष्टिके आदिका सृष्टिके पितामहका दिया प्रश्न है। इस प्रश्नका समाधान पाये बिना सृष्टिकी समस्या नहीं सुलझती और नहीं सुलझती जीवकी उलझन।

स्रष्टाने भी उत्तर बाहर ढूँढ़ना चाहा। वे भी अनन्त जल राशिमें नीचे-नीचे उतरते गये, युगों तक। हम भी वही कर रहे हैं। अनन्त-अनन्त युगोंसे हम भी बाहर—दृश्य जगत्‌में वही उत्तर ढूँढ़ रहे हैं।

स्रष्टा निराश होकर लौट आये थे। अपने पद्मपर वे नेत्र बन्द करके बैठ गये थे और तब उन्होंने वह उत्तर प्राप्त कर लिया था।

अन्तर्मुखता में निहित वह उत्तर—काश हम भी इस भवाब्धिमें डुबकी लगानेके अपने प्रयत्नसे लौट पड़ते और नेत्र बंद करके बैठ जाते !

उत्तर पानेका दूसरा मार्ग स्रष्टाको भी नहीं मिला था।

प्रश्न कब और कैसे पूछना चाहिये ?

'मधुसूदन, मोक्षका स्वरूप क्या है ?' एकही रथपर अर्जुन और श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थसे आखेटके लिए निकले

थे। दोनों मित्र पास रथके पृष्ठ भागमें बैठे हुए थे और सारथीके संकेतपर रथके अश्व लगभग उड़ेसे जारहे थे। अनेक प्रकारकी चर्चाओंके मध्य जब पार्थने यह प्रश्न किया, रथ वन-सीमामें प्रवेश करने ही वाला था।

'धनञ्जय, गाण्डीव उठाओ मित्र !' श्रीकृष्णने जैसे प्रश्न सुना ही नहीं—'वह शालतरुसे टिका वाराह तुम्हारे बाणकी प्रतीक्षा कर रहा है।'

श्रीकृष्णने अपने शारंग पर ज्या चढ़ाली थी और उनका दक्षिण कर त्रोण की ओर वाण लेने बढ़ चुका था। अर्जुनने समझ लिया कि उनके प्रश्न का उत्तर उनके सखा इस समय नहीं देंगे। वे भी आखेट - क्रीड़ामें लग गये।

'माधव, मोक्षका स्वरूप क्या है ?' वही प्रश्न वही शब्द; किन्तु प्रश्नकर्ता वह नहीं था, समय वह नहीं था दूसरे दिन मध्याह्न भोजन करके श्रीद्वारिकेश अर्जुनके सदनमें शय्यापर आधे लेटे थे। उनके श्रीचरण विजयकी गोदमें पड़े थे और महारानी द्रोपदी व्यजन लिये खड़ीं थीं, जब धर्मराजके आनेकी सूचना द्वार-रक्षिकाने दी।

'मैं जिज्ञासु होकर आया हूँ।' युधिष्ठिरने अर्जुन और श्रीकृष्णका प्रणाम स्वीकार कर लिया; किन्तु वे शय्यापर बैठनेके स्थानपर एक पृथक पीठपर बैठ गये—'आप यदि अनुग्रह पूर्वक आसीन हो जायँ अपने आसनपर स्वस्थ भावसे तो समझलूँ कि अनवसर आनेकी धृष्टता मैंने नहीं की है।'

'छोटोंको गुरुजनोंका आदेश स्वीकार करना चाहिये'—यह कहते हुए सहास्य श्यामसुन्दर पूर्वकी भाँति शय्यापर विराजमान होगये।

'यदि आप मुझे अधिकारी समझते हों ··· ' अपने प्रश्नके साथ युधिष्ठरने सविनय इतना और कहा। श्रीकृष्णचन्द्र शय्यापर उठ कर स्थिर बैठ गये और फिर उनकी वाणीने जो गम्भीर विवेचन प्रारम्भ किया वह उपनिषद् तत्त्वका निरूपण ही था।

'मित्र, बिना पूछे उत्तर न दिया जाय और जो अनवसर, अविनय-पूर्वक अथवा अनधिकार पूछता हो उसे भी उत्तर न दिया जाय, यह मर्यादा है।' युधिष्ठिरके चले जानेपर अर्जुनकी प्रश्न भरी भंगी देखकर उनके सखाने उनके कन्धेपर हाथ रखते हुए कहा।

श्रेष्ठ दान क्या ? श्रेष्ठ दानी कौन ?

सविनय सस्नेह पूछा था धनंजयने अपने परमप्रिय सखा श्रीकृष्णसे, जब वे एकान्तमें स्वस्थ विराजमान थे। राजसूर्य यज्ञ सम्पूर्ण हो चुका था और युधिष्ठर भूमण्डलके सम्राट उद्घोषित हो चुके थे। 'माधव ! श्रेष्ठतम दान क्या है ?' अर्जुन अपनी गोदमें रख कर बड़ी सुकुमारतासे श्यामसुन्दरके श्रीचरण दबा रहे थे।

'जिसकी पूर्ति अर्थीके लिए तत्काल आवश्यक हो' बहुत सीधा और सरल उत्तर मिला।

'श्रेष्ठतम दानी कौन है ?'—दूसरा प्रश्न हुआ।

'जो निसर्गसे—स्वभाव सिद्ध दानी हो। जिसे दानके लिए सोचना न पड़े।' श्रीकृष्णने उदाहरण दे दिया—'जैसे इस समयके सर्वश्रेष्ठ दानी हैं कर्ण।'

'धर्मराजने कभी कहीं प्रमाद किया है इस विषय में ?' अर्जुनको उदाहरणसे निराशा और क्षोभ हुआ था। कर्णमें ऐसी क्या विशेषता है कि वह उनके अग्रजसे श्रेष्ठ माना जाय !

'एक याचक आरहा है'—लीलामयके अधरोंपर स्मित आया—'हम दोनों छिपे रह कर उसका अनुगमन करेंगे।'

'भगवन् ! हम अत्यन्त विवश हैं। नगरमें कहीं थोड़ा भी चन्दन उपलब्ध नहीं !'—अत्यन्त खिन्न थे धर्मराज युधिष्ठिर।

'महाराज ! आपका कल्याण हो !'—याचक सम्राटके द्वारसे निराश लौट गया—कदाचित पाण्डवोंके जीवनमें यह प्रथम घटना थी, किन्तु जब लीलामय श्रीकृष्ण कुछ करना चाहें—उसे कौन रोक सकता है।

'राजन ! मैं अपने हाथसे चन्दन काष्ठकी अग्निपर भोजन बनाकर अपने आराध्यको नैवेद्य अर्पित करता हूँ' — याचक कर्णके पास पहुँच गया पाण्डवोंके द्वारसे

चलकर—'दरिद्र नहीं हूँ। नगरमें मिल जाता तो क्रय कर सकता था चन्दन, किन्तु अब तो उदार दाताओंके द्वारसे भी निराश होकर आपके यहाँ आया हूं। उपवास कर सकता हूँ, किन्तु आराध्यको उपोषित रखना ......'

'आप यथेच्छ चन्दन काष्ठ अभी लीजिये !'—कर्णने याचककी बात पूरी होनेसे पहिले ही धनुषपर प्रत्यंचा चढ़ाली। उस महादानीके मुख्य द्वारके स्वर्ण मण्डित रत्नखचित चन्दन कपाट दो क्षणमें उसके अपने बाणोंसे खण्ड-खण्ड होगये। सेवकोंने तत्काल काष्ठ एकत्र करके सामने रख दिया बाँध कर।

'और कोई सेवा ?'—कर्णने अंजलि बाँधकर जब पूछा, याचकका गद्‌गद् आशीर्वाद स्वर गूँजा—'आपके धर्मकी अधिवृद्धि हो।'

पीछे-पीछे अर्जुनने मस्तक झुका लिया था। उनके राजसदनमें चन्दनके कपाट पलंग आदि क्या कम थे; किन्तु वे काष्ठके रूपमें दिये जा सकते हैं, यह स्मरण किसे आया ?

तनिक टालो तो अच्छा

सब मुझे कोसते रहते हैं। सब मुझे फटकारते रहते हैं। एक दिन तो बिना डाँट-फटकार सुने बीतने दो।

घरके लोगोंको कैसे दोष दिया जा सकता है। घरका काम नहीं होगा तो लोग डाँटेंगे नहीं ? बर्तन मलनेपर भी जूठे-चीकट लगे रह जायँ, झाड़ू लगानेपर भी घरमें कूड़ा रह जाय, रसोई कच्ची या जली बने, नमक-हल्दी पड़े ही नहीं या दुगुनी पड़ जाय—मेरा सत्कार करेंगे घरके लोग ?

तुम्हें कोई काम नहीं है। तुम्हें कोई कहने-पूछने वाला नहीं है। तुम बड़े गोपके—गोपराजके लाडले हो ; किन्तु दूसरेपर तो दया करो। वह तो सदा खाली नहीं। उनके तो घर काम हैं। उसे तो चार कहने-सुनने वाले हैं।

एक यही घर तो व्रजमें नहीं है। दूसरे भी घर हैं। तुम्हारा स्वागत तो सब कहीं होगा। तुम्हें सब चाहते हैं। तब तुम रात-दिन यहीं क्यों अड़े रहते हो। घूम-फिर आया करो। खेल-कूद आया करो। कभी-कभीका आना ही अच्छा होता है।

तुम होते हो सामने तो आँखें दूसरी ओर नहीं जाती। कान दूसरेके शब्द नहीं सुनते। देहसे क्या होता है, पता रखा नहीं जा सकता।

तुम सामने रहोगे तो कोई काम ठीक नहीं हो सकेगा और काम तो करना है। घरका काम किये बिना कहीं छुटकारा नहीं। इसलिए देवता ! हाथ जोड़ूँ, तुम्हारे पैर पड़ूँ ! तुम यहाँसे तनिक टलो तो अच्छा !

'एक क्षण—केवल एक क्षणके लिए इस हृदयमें पधारें नाथ !' अत्यन्त कातर प्रार्थना ऋषि-मुनि, योगी-

सिद्ध, तापस-व्रती जिससे इस प्रकार जन्म-जन्म करके कभी सफल होते हैं, उससे गोपी प्रार्थना करती है— 'तनिक टलो तो अच्छा।'

किसक ामहा प्रभाव है वह? उसी प्रेमका।

जिन उरझाई सोई सुरझावै

निम्बार्क सम्प्रदायके प्रसिद्ध संत ब्रज-दूलह नागा बाबाकी बात है। उस समय ब्रजमें गिने-चुने मन्दिर थे और चारों ओर वनझाड़ियाँ थीं। नागावाबा अद्भुत अलमस्त थे। आप रात्रि व्यतीत करते वृन्दावनमें, प्रातः मथुरा पहुँच जाते और मध्याह्नमें गिरिराज। सायंकाल बरसाने पहुँच कर श्रीजीके दर्शन करके तब वृन्दाबनको चल पड़ते।

आज तो प्रतिदिन इतनी लम्बी यात्रा सोच पाना भी कठिन है; किन्तु अवधूत नागा बाबाका यह नित्य क्रम था। इसी यात्रामें ही ब्रजवासियोंके घरोंसे आप आटा माँग लेते और कहीं 'बाटी' सेंक कर प्रसाद भी पा लेते।

सुगठित शरीर, लम्बी जटाएँ, भव्य मूर्ति। एक दिन आप नित्यकी भाँति तीव्र गतिसे चले जारहे थे कि जटा किसी वन-झाड़ीकी टहनीमें फँस गयी। एक झटका लगा और अवधूत चुप-चाप उस टहनीके पास सटकर खड़ा होगया।

दिनमें गाय चराते ब्रजवासियोंके लड़कोंने देखा नागा बाबाको। यह बाबा उन्हें बहुत प्रिय था। उन्होंने कहा 'बाबा हम तेरी जटा सुरझा दें!' लेकिन बाबाने उन्हें समीप ही नहीं आने दिया। वे स्थिर खड़े थे और हठ पकड़ लिया था—'जिन उरझाई सोई सुरझावै।'

दिन बीता, रात आयी। नागा बाबा स्थिर खड़े। न अन्न, न जल और न हिलनेका नाम। उनका शरीर भी जैसे उस झाड़ीका ही कोई भाग हो। पूरे सात दिन इसी प्रकार बीत गये।

'बाबा, ला तेरी जटा सुरझाय दऊँ।' सातवीं रात्रिको वह वन-भूमि धन्य होगयी। कोटि-कोटि चन्द्रज्योत्स्ना लज्जित हो ऐसा शीतल स्निग्ध प्रकाश और सुधा-स्यन्दि-स्वर। मयूर-मुकुटी, वनमाली नन्दनन्दन स्वयं सामने खड़ा था।

'दूर रहै! तू को है? मेरी जटा छुवै मत!' लेकिन नागा बाबाने पहिचाननेसे तकसे इंकार कर दिया। धन्य अवधूत!

'मैं कृष्ण!' हँसा वह नीलसुन्दर।

'श्रीवृषभानु नन्दिनीके बिना अकेले कृष्णको मैं पहिचान नहीं सकूँ।' अवधूतने स्थिर उत्तर दिया—और तब श्यामकी नित्यसंगिनीको भी प्रगट होना पड़ा।

अवधूतकी उलझी सुलझ गयी।

❖

निष्ठाके छींटे

लगभग सवा सदी पुरानी बात—अंग्रेजी शासन अपने पूरे दबदबेमें था। गोरी चमड़ीके सामने राजा-नबाब सब काँपते थे। जन सामान्यके लिए तो लाल पगड़ी ही महान आतङ्क थी।

मथुराकी फौजी छावनीसे कोई कप्तान साहब घोड़े पर निकले थे। कलक्टर साहबके साथ दौरे पर वे भी गये थे। ब्रजके दो एक स्थानों पर पड़ाव पड़े। वह सब विवरण देनेकी आवश्यकता नहीं है।

साहबको किसी कारण लौटना था। वे मजेसे चाय पीकर बरसानेसे चले। कोसी पहुँचकर ट्रेन पकड़ लेनी थी। बरसानेसे चपरासियोंने एक बूढ़े चमारको बेगारमें पकड़ लिया साहबका बिस्तर ढोनेके लिए।

साहबने कोई चपरासी साथ नहीं लिया। वे घोड़े-पर चल पड़े। कोसीका थानेदार उनको मिल ही जायगा। केवल बूढ़ा चमार बिस्तर लेकर उनके पीछे-पीछे चला।

गर्मीकी तेज धूप, भारी बिस्तरा, बूढ़ा शरीर और सबेरेका कलेऊ पहर भर दिन चढ़े वह करने ही जारहा था कि पकड़ लिया गया था बेगारमें। खाली पेट, प्याससे सूखता कण्ठ, किन्तु बोले तो चाबुक जो पड़ेंगे। वैसे ही साहब उसके धीरे चलनेपर गाली दे रहा था।

शरीर कहाँ तक साथ दे? प्याससे कण्ठ सूखा जारहा था। साहबने कहा भी—'पानी पीले!' कुआ था समीप

और उसपर पानी निकालनेके साधन भी थे; किन्तु बरसानेकी सीमा पीछे छूट चुकी। यह नन्दगाँवकी सीमा—उसने कहा—'हजूर ! हमारे गाँवकी लाली यहाँ ब्याही गयी, यहाँका पानी कैसे पीलूँ ?'

अंग्रेजकी समझमें कुछ नहीं आया। उसने एक 'गाली दी और घोड़ा बढ़ाया। चमार भी चला; किन्तु थोड़े डग जाकर पैर लड़खड़ाये, गिर गया। बिस्तर गिरनेके धमाकेसे अंग्रेज चौंका। उसने घोड़ा मोड़ा।

'बाबा ! मैं बरसाने तें पानी लायी हूँ।' कोई बालिका—अद्भुत सौन्दर्यमयी कमल नेत्रोंमें जल भरे पानी लिये बूढ़े चमारके मुखके पास बैठी उसपर झुकी थी।

मथुराका सरकारी गजट कहता है उस समयका, कि साहबके पास आने तक वह बालिका पता नहीं कैसे अदृश्य होगयी। वह चमार उसी समय पागल हो गया था। साहबने मथुरा आकर नौकरीसे स्तीफा दे दिया। चमारकी निष्ठाके छींटे उनपर पड़ चुके थे और धन्य कर दिया था उन छींटोंने उन्हें।

श्रद्धाका प्रसाद

अब नाम पता भूल गया है; किन्तु घटना सच्ची है और दक्षिण भारतके ही किसी जिलेके सरकारी गजटकी है।

रुपयेकी माया सदासे मनुष्यको मोहित करती रही है। मनुष्यने कितना पाप, कितना छल, कितना विश्वासघात किया है इस रुपयेके पीछे—कोई गणना है ?

सम्पन्न और विश्वासी समझकर उसने अपनी पूरी पूँजी एक प्रतिष्ठित सज्जनके यहाँ रख दी और तीर्थयात्रा करने चला गया। लिखापढ़ी वैसे भी तब बहुत प्रचलित नहीं थी। सरल विश्वासके कारण उसने एकान्तमें हो अपना धन दिया था। भारतमें तब इसप्रकारका विश्वास बहुत सुलभ था।

लौटा तीर्थयात्रासे तो उसे सुननेको मिली गालियाँ— 'हमें झूँठा बनाते हो। बेईमान समझते हो। कब दिया था तुमने हमें कुछ !' धक्के देकर निकाल दिया गया उन प्रतिष्ठित सज्जनकी कोठीसे।

अपमानकी वेदना सही नहीं गयी। न्यायालय पहुँचा ; किन्तु न्यायालयको तो गवाह चाहिये। उसने कहा— 'कोदण्डपणि साक्षी हैं।' न्यायालयने कोदण्डपाणिके नाम सम्मन जारी कर दिया, यह समझ कर कि कोई मनुष्य ही होगा।

मन्दिर तो नगरमें था ही कोदण्डपाणिका। व्यक्ति नहीं मिला तो चपरासीने सम्मन वहाँ चिपका दिया। मुकदमेकी तारीख आयी और न्यायाधीशके चपरासीने अपने उच्चस्वरमें कोदण्डपाणिकी पुकार की।

आप मानें या न माने, किन्तु गजट कहता है कि सचमुच एक साँवला, अद्‌भुत सुन्दर नौजवान न्यायालयमें उपस्थित होगया कोदण्डपाणि नामपर और उसने शपथ

ली, बयान दिया ! उसने बताया कि प्रतिवादीके यहाँ एक और रोकड़बही है और उसमें वादीका धन जमा है।

साक्षीकी सूचनाके अनुसार तलाशी हुई। रोकड़बही मिली। प्रतिवादीको धनके साथ अर्थ दण्ड भी देना पड़ा; किन्तु अपने बयानपर हस्ताक्षर करनेको जब ढूंढ़ा गया तो गवाह कोदण्डपाणिका कहीं पता नहीं था।

वादीकी बात मत पूछिये। जिसकी दृढ़ श्रद्धा मन्दिरके आराध्य पीठसे, त्रिभुवनके स्वामीको न्यायालयमें खींच लायी, उसकी स्थिति क्या कहेगा कोई ! प्रतिवादीका क्या हुआ, पता नहीं; किन्तु जजको उस श्रद्धाका प्रसाद मिल गया था। वे पदत्याग कर अयोध्या आगये और आजीवन वहीं रहे।

जब वह कृपा करे।

सुनी सुनायी बात—लेकिन भैया, भगवद्दर्शनका पथ ही श्रद्धाका पथ है। देखी दिखायी बात भला इस विषयमें कैसे सम्भव है। भगवान्‌का स्वभाव अच्छा नहीं—वे भीड़में आना एकदम पसन्द नहीं करते। किसीके सामने आवेंगे भी तो एकान्तमें। ऐसी अवस्थामें वही किसीसे कृपा करके बतादे—बात तो सदा सुनी-सुनायी रहेगी।

(दक्षिण भारतमें श्रीरामजीको प्रायः कोदण्डपाणि कहा जाता है।

श्रीहरिबाबाजी महाराज उच्चकोटिके संत हैं, यह उनके एक बार भी परिचयमें आये व्यक्तिकी समझमें आये बिना रह ही नहीं सकता। उनके गुरुदेव कभी वृन्दावन आये थे। उस समय वृन्दावनमें न इतने भवन थे, न इतनी भीड़।

'एक महीने प्रतीक्षा करूँगा! श्यामसुन्दर इस अवधिमें दर्शन नहीं दे देते तो इस अधम देहको रखनेसे लाभ?' तीव्रतम वैराग्य और उत्कट लालसा थी भगवद्दर्शनकी।

रात्रिमें सेवाकुञ्जकी चहार-दीवारीपर जाकर बैठ जाया करते थे और रात्रि-भर रुदन, पुकार, प्रतीक्षा चलती थी। तब चहारदीवारी आज जैसी ऊँची नहीं थी। स्थान-स्थानसे टूटी-फूटी थी। वे कुञ्जमें चले भी जाते तो उस समय साधुपर डण्डा चलाने या उसे मार देनेका पण्डे-पुजारी साहस न करते। तब तक उनमें भी श्रद्धाका अवशेष रहा था; लेकिन बाबाजीने चहार-दीवारीसे उतरनेकी इच्छा ही नहीं की।

एक दिन, दो दिन, सप्ताह और महीना पूरा। अन्तिम रात्रि महीनेकी। आप क्या सोचते हैं कि ऐसा निष्ठावान, पागलप्राण कहीं ब्रजसे बहुत दूर, भारतसे बाहर भी प्रतीक्षा करता तो उसकी प्रतीक्षा अफल कर देनेका साहस वह करुणा-वरुणालय कर सकता था? उसकी प्रतीक्षा तो धन्य होनी थी, हुई।

'कोई मानव है यहाँ?' सहसा प्रतीक्षा करने वालेके श्रवणोंमें एक लोकोत्तर मधुर स्वर पड़ा और उसने

ज्योत्स्ना-स्नात-कुञ्जमें जो दृश्य देखा……वर्णन उसका सम्भव नहीं।

'कोई बाहरका नहीं है।' सहचरीसे श्रीवृषभानु नन्दिनी स्वयं कह रही थीं—'अपना ही है। उसे बुला ले।'

अधीश्वरीकी ही अनुमति हो तो बाधा ? बुला लिया गया वह प्रेमोन्मत्त प्राण और धन्य हो गया।

अच्छा इतना और सुन लीजिये कि उसके पश्चात् भी वे परम भागवत् धराको पर्याप्त समय तक पवित्र करते जीवित रहे।

आनन्दी माई

आप कभी वृन्दाबन आवें तो आनन्दीमाईके मन्दिरमें भी दर्शन कर जायं। श्रीराधाबल्लभजीके मन्दिरके समीप ही है यह मन्दिर और इसमें श्रीविग्रहकी जो अपूर्व शोभा है, बिना दर्शन किये आप कैसे समझ सकते हैं ?

मैंने उस श्रद्धामयी वृद्धाके दर्शन किये थे। दुबला गौरवर्ण देह, वस्त्रोंके समान ही श्वेत केश—अभी हुए ही कितने वर्ष उसे गोलोकवास प्राप्त किये।

'आ लाला !' बड़ी उमंगसे उठती थी देखकर और जब भी गया हूँ उसके मन्दिरमें, वह व्यस्त मिली है।

कभी पंखा झल रही है, कभी पलना हिला रही है, कभी कोई आभूषण बनाने-सजानेमें लगी है और कभी किसी पोशाकको ठीक कर रही है।

अपना सर्वस्व उसने लगा दिया था वृन्दाबनके इस मन्दिरमें और स्वयं मन्दिरमें बस गयी थी। ये श्रीराधा-कृष्ण -लेकिन ये तो उसके लड़ैते पुत्र-पुत्रवधू और वह इस घरकी वृद्धा माँ।

'यह राधा मुझे बिकवा कर रहेगी! उस दिन मैं सवेरे चला गया मन्दिरमें और देखता हूँ कि माई झुंझला रही है, रोषमें है। एक सुन्दर रेशमी साड़ी है उसके हाथोंमें।

'माई! क्या बात है?' मैंने पूछा।

'आ लाला!' वह उसी उत्साहसे उठी और उसने वह रेशमी साड़ी मेरे आगे कर दी—'अब तू ही देख कि यह साड़ी क्या बुरी है? लेकिन इस बहूके मनको जो न भावे उसे यह किसी तरह पहिनेगी नहीं। दूसरी साड़ीके पचास रुपये अधिक मांगता था दूकानदार!'

माई साड़ी लेने गयी थी। पसन्द उसे दूसरी ही साड़ी थी, किन्तु पच्चीस रुपये बचा लिये उसने पीछे सेवामें लगानेको और यह साड़ी ले आयी। अब उसकी मानिनी पुत्रवधू है कि इस साड़ीको पहिनती ही नहीं।

'लाला तू तनिक बैठ!' माईको उसी समय उस साड़ीको लौटाकर वह दूसरी लानी थी, वह झुंझलाये

चाहे जितना, अपनी पुत्रवधूको उदास मुख तो नहीं देख सकती।

आपको आज तो मन्दिरमें श्रीविग्रहके ही दर्शन होने हैं। जिसके लिये ये नित्य प्रत्यक्ष हंसने-हंसाने, रूठने-रुठाने वाले थे वह स्नेहमयी तो अब इनका नित्य दुलार करने नित्य धाम जा चुकी है।

ग्वारिया बाबा

अभी तो बहुत लोग है ब्रजमें, जिन्होंने ग्वारिया बाबाका दर्शन पाया है। लम्बा गोरा शरीर, उज्वल केश, सर्वांगमें झुर्रियाँ, किन्तु युवकोंको लज्जित करे ऐसी स्फूर्ति। वे सफेद खादीका भारी एड़ी तक लटकता कुर्ता—चोगा कहना चाहिये पहिनते थे। लगभग सात सेर वजनी चोगा और उसकी जेबोंमें पता नहीं कितना अंगड़-खंगड़ भरे रहते थे।

वे मौन रहते थे। ब्रजवासियोंके घरोंसे मधुकरी करते थे; किन्तु आटा मांग कर एक मोटा टिक्कर पतिदिन बनाते थे और उसे जेबमें भर लेते थे। कहते थे- यह यारके लिए है।

'आप और आपका यार दोनों स्वार्थी।' मैंने उन्हें एक दिन उलाहना दिया—'न आप कभी कुछ खिलाते और न वही।'

उनका मुझपर बहुत स्नेह था झट हाथ पकड़ा और खींच ले चले। गोपाष्टमीका दिन था। वंशीवटपर एक रास-मण्डलीका रास हो रहा था। बन-भोजनलीला चलने वाली थी। बाबा और मैं भीड़के पीछे बैठ गये।

वन-भोजनका प्रसंग आया। दो बड़े सकोरोंमें मिठाइयाँ थीं। रासके ठाकुरने दोनों सकोरे उठाये और भीड़के बीचसे चल पड़े। लोगोंने मार्ग दिया और दोनों सकोरे मेरे सामने रखकर वे भी बैठ गये।

बड़ा व्यतिक्रम था यह, होता यह है कि रासमें ग्वाल-बाल बने लोगोंके साथ ठाकुरजी वन-भोजन करते हैं और पीछे रासके स्वामी (संचालक) जिन सम्पन्न लोगोंसे अच्छी भेंट मिलनेकी आशा होती है, उन्हें संकेत करके ठाकुरजीसे प्रसाद दिलवाते हैं। लेकिन यहाँ तो वन-भोजन-लीला भी नहीं हुई थी। सब देखते रह गये। लेकिन भरी भीड़में रासके संचालकको बाधा देनेका साहस नहीं हुआ।

मैं ठाकुरजीके मुखमें मिठाई दे रहा था और वे मेरे मुखमें। एक सकोरा समाप्त हो गया। दूसरा भी आधा हो गया, तब ग्वारिया बाबा पास खिसक आये वे रासके स्वरूपोंसे मौन नहीं रखते थे। गाली देकर ब्रजके सहज प्रेममें बोले—'दारीके ! मोय नेकऊ नांय देनो ?'

अब तीन हो गये हम। कौन किसके मुखमें दे रहा है—कुछ नियम नहीं रहा। छीना-झपटीभी चली। सकोर दो मिनटमें समाप्त होगया तो ठाकुरजी उठे। वे रासके स्थानपर गये और मुझे ऐसा लगा—जैसे सोतेसे जगे हों।

ग्वारिया बाबाने मेरे हाथ खींचकर संकेत किया—'अब यहाँसे खिसक चलो।' और मैं चला आया।

बहिन सरस्वती

'माँ! मेरा भैया कहाँ है?' अपनी भोली कन्याके इस प्रश्नका बेचारी विधवा ब्राह्मणी क्या उत्तर दे। कहाँ है उसका भैया? अपनी माताकी वह एकमात्र सन्तान—अब माँ उसके लिए भैया कहाँसे लावे?

'भैयाको मैं भी राखी बाँधूँगी।' सब लड़कियाँ अपने-अपने भाइयोंको राखी बाँध रही हैं तो वह क्यों नहीं बाँधेगी? वह नन्हीं बच्ची कहाँ सोचती है कि उसके भाई होता तो पहिले उसे दीखा मिला होता। वह तो मचल रही है—'मैं राखी बाँधूँगी राखी लादे मुझे।'

'गोपाल तेरा भैया है।' माँने बच्चीसे कह दिया और क्या झूठ कहा—जो किसीका पिता है, किसीका पुत्र है, किसीका स्वामी है और परमहंस रामकृष्ण जैसेकी माँ भी बन जाता है, वह नन्हीं सरस्वतीका भैया क्यों नहीं हो सकता?

तनिक-सी रुई धागेमें बाँधी और लाल रंगमें रँगकर देदी ब्राह्मणीने—'ले राखी। गोपाल भैया आवे तो बाँध देना।'

'कब आवेगा गोपाल भैया ?' बच्चीने बड़े उल्लाससे पूछा।

'आजायगा जब आना होगा।' ब्राह्मणी क्या बतावे कि वह कब आवेगा—'तू जब खेलने चली जाती है तो कुछ ठीक रहता है कि घर कब लौटेगी। गोपाल भैया तुझसे बड़ा है। उसका मन होगा तब आवेगा।'

'हाँ आवेगा !' भोली बच्ची सन्तुष्ट हो गयी और राखीका धागा लेकर द्वारपर जा खड़ी हुई। उसका गोपाल भैया आवेगा तो वह पहिले राखी बाँधेगी उसे।'

प्रातःकी घटना और दोपहर बीत गया। माता पुकार-पुचकारकर हार गयी; किन्तु सरस्वती द्वारसे नहीं हटी। उसने न कुछ खाया, न पानी पिया। वह खाने-पीनेमें लगे और उसका भैया आजाय तो ! देखते-देखते शाम हुई, रात्रि बढ़ने लगी; किन्तु बालिका द्वारसे न हटी, न हटी।

ब्राह्मणीने अपने आराध्यके सम्मुख बैठकर रुदन प्रारम्भ किया। दूसरा वह कर ही क्या सकती थी।

अचानक कूदती, हँसती सरस्वती दौड़ी आयी—'माँ' माँ देख !'

माता चौंक गयी। मणिके प्रकाशमय कुण्डल थे सरस्वतीके करोंमें—गोपाल भैया दे गया है।' उसने अपने भैयाको राखी बाँध दी थी।

❖

धन्य माँ !

श्री उड़िया बाबाजी महाराज उन दिनों अनूपशहर थे। गंगा तटके समीप ही वे ठहरे थे। जाड़ोंके दिन थे। धूपमें कुछ श्रद्धालुओंके मध्य श्रीमहाराज बैठे थे। एक प्रौढ़ा, विधवा स्त्री आयी और उसने महाराजजीके चरणोंके समीप पृथ्वीमें मस्तक रखकर प्रणाम किया।

'मैया ! तू इतने दिन चढ़े स्नान करती है ?' उस स्त्रीके पास लोटा तथा स्नानके लिए सूखे वस्त्र थे। वह उड़िया बाबाजीको देखकर गंगा तटपर उतरनेके पूर्व प्रणाम करने मुड़ आयी थी। अतः महाराजजीने कहा— 'गंगा-स्नान तो सूर्योदयसे पहिले करना चाहिये।

झर-झर आँसू गिरने लगे उस स्त्रीके नेत्रोंसे। सब लोग चकित रह गये। दूसरोंने तथा श्रीउड़िया बाबाजी महाराजने पूछा कि क्या बात है।

'आप महापुरुष हैं। आपकी आज्ञा भला कैसे तोड़ी जा सकती है।' वह फिर हिचकती रोती बोली—'लेकिन मैं सवेरे स्नान करूँगी तो मेरे लालाको सर्दी लग जायगी ! वह मेरा दूध ही तो पीता है !'

'क्षमा करो माँ, मुझसे भूल होगयी !' श्रीउड़िया बाबाजी महाराज तत्काल बोले —'मुझे तुम्हारे लालाका ध्यान नहीं था। तुम खूब दिन चढ़े तभी स्नान किया करो !'

वह प्रसन्न होकर पुनः प्रणाम करके चली गयी गंगा तटपर। लोगोंकी समझमें बात आयी नहीं थी। इस

विधवा, प्रौढ़ाका दूध पीनेवाला लाला कौन ? श्रीउड़िया बाबाजीने बताया—'ये श्यामसुन्दरको अपना पुत्र मानती-जानती है।'

'धन्य माँ !' एक ही उद्गार था सब हृदयोंका।

छोटा काछी

बात बहुत पुरानी नहीं; किन्तु इतनी पुरानी अवश्य है कि तब भारतपर अंग्रेजी शासन था और देशी राज्योंकी प्रजाका एक बड़ा भाग बहुत पिछड़ा हुआ था। उसमें भी पन्ना, रीवा जैसे देशी राज्योंकी प्रजा जो जंगली भागोंमें रहती थी—अब भी उस प्रजाका अधिकांश वर्ग पिछड़ा है। जिन्होंने आज तक रेल नहीं देखी, ऐसे लोग पर्याप्त इस ओर मिल जायँगे।

छोटा इस पिछड़े वन्य भागका ग्रामीण और वह भी काछी। पढ़ायी-लिखायीकी चर्चा व्यर्थ। अपनी युवावस्थामें वह कुछ समय सतना रह गया था, बाबू लालबिहारीजीके यहाँ घरेलू सेवकके रूपमें और उनके पुत्र श्रीशारदा प्रसादजी (मन्त्री मानस संघ) को बचपनमें उसने खिलाया था।

अपने मोटरके व्यवसायके सिलसिलेमें जब एकबार श्रीशारदाप्रसादजी एक गाँवमें मार्ग भूलकर पहुँच गये तो बूढ़ा छोटा काछी मिल गया। उसने उन्हें पहिचान लिया

और वह यदा-कदा शाक-सब्जीकी भेंट लेकर उसके बाद उनके पास सतना आने लगा ।

'छोटा ! क्या खाओगे ?' एकबार छोटा इसी प्रकार सतना आया तो उससे पूछा गया । उसने गुलाब-जामुन खानेकी इच्छा प्रकट की और उसे भरपेट रसगुल्ले-गुलाबजामुन मिले । दूसरे दिन फिर पूछा गया—'गुलाब जामुन खाओगे ।'

'नहीं बाबू ! अब जिन्दगीमें कभी नहीं खाऊँगा, छोटा दुखी था और उसके स्वरमें दृढ़ निश्चय था—'इसे खानेसे मेरे रामजी रात नहीं आये ।'

वह सीधा, अनपढ़ ग्रामीण बातें बनाना नहीं जानता था। उस दिन उसने बता दिया कि हर रातको उसके रामजी आते हैं, किन्तु उस रात नहीं आये ।

स्वभावतः शारदा प्रसादजीकी रुचि छोटामें बढ़ गयी । अब वह सतना आता तो उसे वे अपने कमरेमें ही रात्रिको शयन कराते । छोटा अब इस धरापर नहीं है । शारदा प्रसादजी कहते हैं—'मैं अधिकारी नहीं था। मुझे भगवद्दर्शन भला कैसे होता; किन्तु एक दिन जब छोटा कमरेमें सो रहा था, रात्रिको मेरी नींद टूटी तो देखता हूँ कि एक प्रकाशपुञ्ज कमरेमें आया और कुछ क्षण स्थिर रहकर चला गया ।'

वह पढ़ा नहीं था, साधन भजन क्या करता था, पता नहीं; किन्तु सरल था, ईमानदार था, निर्मल मन था ।

उसे प्रभुने स्वयं पसन्द किया ; क्योंकि वे कहते हैं—

' निर्मल मन जन सो मोहि पावा ।'

तिनके पीछे हरि फिरैं

नाम-धाम तो पूछिये मत ! यह बात सदा बताने योग्य नहीं हुआ करती , वैसे आपको अविश्वास का रोग हो न हो तो विश्वास कीजिये बात सच है ।

युवक था वह । दुबला शरीर, बड़े-बड़े रूखे बाल , नन्हीं सी दाढ़ी । पासमें एक चद्दर , एक कम्बल , एक झोला । झोलेमें भी लोटा और पाठकी पुस्तक मात्र ।

कोई परिचय नहीं । कोई साधन नहीं । वेश भी ठीक साधुका नहीं । पासमें कानी कौड़ी नहीं ।

' आप ये पाँच रुपये अवश्य ले जाइये !' किसी परिचितने टिकट दे दिया था और चलते समय आग्रह किया था ।

' चक्रवर्ती सम्राटके घर जारहा हूँ किसी कंगालके यहाँ नहीं ।' बड़ा अलमस्त उत्तर था—मर्यादा पुरुषोत्तमको अतिथि-सत्कार भी करना नहीं आता होगा—ऐसा आप सोचते हैं क्या ?'

किसी पागल कुत्ते ने काटा है कि ऐसे पागलोंसे सिर खपावे । वे सज्जन स्टेशनसे लौट गये थे और जब वह

अयोध्या स्टेशन उतरा प्रात;कालका ही समय था पैदल जाकर सरयू स्नान और पूजनसे निवृत्त हुआ पुलिन-पर ही।

'आप जलपान करलें !' अपने नित्य कर्मसे छुटकारा पाकर पूजाकी पोथी झोलेमें डाली और एक बाबू साहब दोने भर जलेबी लिये सामने नम्रता पूर्वक प्रार्थना कर रहे थे।

'आज आप कनक-भवन बिहारीजीका आतिथ्य ग्रहण करेंगे !' मध्याह्नसे पूर्वही जब वह दर्शन करने गया एक बूढ़े जटाधारी भव्यकाय महन्तजीने उसे मन्दिरसे निकलते ही पकड़ा। आतिथ्य ग्रहण करने तो वह आया ही था।

'जब आप किसीसे कुछ माँगते नहीं, पास कुछ रखते नहीं ओर जहाँ कोई कुछ दे सके, भोजन करा सके उन स्थानोंसे भी दूर भागते रहते हैं' तीसरे दिन एक अत्यन्त वृद्ध वैष्णव सरयू तटपर उसे मिले और समझाने लगे—'तब ऐसे स्थानपर तो रहिये कि रामजीको कष्ट न हो। खण्डहरोंमें, झाड़ियोंमै टूटी कबरोंके बीचमें आप छिपते फिरते हैं। यह भी सोचते हैं कि उन स्थानोंमें परम सुकुमार श्रीरघुनाथको कितना कष्ट होता होगा।'

वह फूट-फूटकर रो रहा था। सचमुच वह ऐसे ही स्थानोंमें इन दिनों छिपता फिरा और उसका आतिथ्य तो वहाँ भी हुआ। उसी दिन वह अयोध्यासे चित्रकूट चला गया। तपस्या करनी है तो तपोभूमिमें रहना चाहिये।

❖

विश्वास

कण्ट्रोलके पिछले समयकी बात है। एक साधु पहुँचे एक अच्छे सार्वजनिक आश्रममें। बाजारमें उन दिनों सवा पाव गेहूँ मिलता था एक रुपयेका उस स्थानपर। आश्रम ऐसा सम्पन्न कहाँ कि इन भावों गेहूँ खरीद सके। केवल चनेकी रोटी बनती थी आश्रमके रसोईघरमें।

'आपको चना अनुकूल तो पड़ता है ?' सञ्चालकने उन आगत महोदयसे पूछा और स्थिति स्पष्ट करदी— 'केवल डेढ़ सेर गेहूँ हमारे पास किसी आकस्मिक अवसर के लिए सुरक्षित है।

'तब उसे अभी पीसने दे दीजिये !' बिना किसी चिन्ता और हिचकके वे साधु बोले—'आज ही वह आकस्मिक अवसर है। मैं चना नहीं खाऊँगा और साथ बैठकर दूसरे चना खायँ तो गेहूँ की रोटी मेरे गले नहीं उतरेगी।'

'अच्छी बात ! इस समयका काम तो चलेगा ; किन्तु सञ्चालकने निरुत्साह स्वरमें कुछ कहनेका प्रयत्न किया।

'किन्तु परन्तु कुछ नहीं।' बीचमें ही वे स्थिर स्वरमें बोले—'मुझे बीस दिन रहना है और हम नित्य गेहूँकी रोटी खायँगे। देशमें अकाल पड़े यदि—प्रभु ऐसा दिन कभी न आने दें—लेकिन यदि असम्भव सम्भव होजाय

और देशके प्रधानमन्त्री को भी भूखों रहना पड़े, तो भी मुझे गेहूँ मिलेगा।

सञ्चालक आश्चर्यसे उनके मुखकी ओर देखने लगे। भला ऐसी कौनसी अक्षय बखार इन्हें मिल गयी है!

'आप समझे नहीं! खेतमें गेहूँ न हो और कोई देश सहायता न करे, प्रधानमन्त्रीको कहाँसे गेहूँ मिलेगा?' वे महोदय हँस रहे थे 'किन्तु श्यामसुन्दरको जिसे खिलाना ही पड़े—उसके लिए खेत क्या और सहायता क्या? आकाशको उसके लिए गेहूँ बरसाना पड़ सकता है।'

आकाशसे गेहूँकी वर्षा तो नहीं हुई; किन्तु आधा घण्टा भी नहीं बीता कि एक सेवकने समाचार दिया—'संस्थाका एक बोरा गेहूँका आटा एक मोटर बस सड़कपर डाल गयी है। मँगा लीजिये।'

समीपके नगरके एक उच्च अधिकारीने अपनी ओरसे यह आटा संस्थाको सहायताके रूपमें भेजा था।

हठ व्यर्थ है

मेरे एक मित्र हैं, वे हैं इसलिए नाम नहीं लूँगा। नामसे आपको कोई लाभ नहीं और उन्हें संकोच होगा।

भगवद्दर्शन प्राप्त हो इसका बड़ा प्रबल आग्रह था उनका— किसी भी प्रकार प्राप्त हो। वे उन दिनों इसके लिए कुछ भी करनेको उद्यत थे।

'यमैवेष वृणुते तेन लभ्यः।'

यह भगवती श्रुतिकी वाणी है; किन्तु यह जब समझमें आवे। किसीने उनसे कह दिया—'सेवाकुञ्जमें नित्य श्रीश्यामसुन्दर रात्रिमें रास करते हैं। लेकिन उसे देखने वाला प्रातः मृतक मिलता है।'

वृन्दाबनका सेवाकुञ्ज जिसने देखा है, समझ सकता है कि उसकी सघन झाड़ियोंमें किसी व्यक्तिका छिप रहना कितना सरल है। शामको ही वे झाड़ियोंमें छिपे रहे। आठ बजेके लगभग पण्डे-पुजारियोंने इधर-उधर देखा, पुकारा—'कोई हो कहीं हो तो निकल आओ!' और कुञ्ज बन्द कर दिया।

अन्धकार बढ़ा तो उन्हें सर्पादिका भय लगा। झाड़ियोंसे निकलकर कुञ्जके बीचवाले मन्दिरमें आगये। ब्राह्ममुहूर्तमें जब कुञ्ज खोलकर पण्डा भीतर गया, उसने उन्हें एक लाठी धमक दी। भाग्य अच्छे थे, भागे और निकल आये' अन्यथा सुना तो यह भी गया कि कुञ्जमें रात्रिको रह जानेवाला प्रातः मृत ही मिलता है और वह रास देखकर नहीं, पुजारियोंकी कृपासे मरता है।

लेकिन उन्होंने हठका त्याग नहीं किया। 'भगवान् न सही, उनके कोई परिकर ही सही।' इस निश्चयपर

वे आये और श्रीहनुमानजीका दर्शन प्राप्त करनेके लिए मन्त्रानुष्ठान विधि भी उन्हें एक अच्छे मन्त्रज्ञने बता दी। काशीमें गोस्वामी तुलसीदासजीके आराध्य श्रीहनुमानजीके मन्दिरमें असीघाटपर वे अनुष्ठान करने लगे।

अनुष्ठान चालीस दिन करना था। लेकिन दस-बारह दिनके बाद सर्वांगमें भयंकर पीड़ा होने लगी। बैठना अशक्य होगया। दो-चार दिनको अनुष्ठान स्थगित किया, पीड़ा चली गयी; किन्तु प्रारम्भ करतेही फिर वही पीड़ा। अन्ततः अनुष्ठानका निश्चय उन्हें त्यागना पड़ा।

हमारा हठ व्यर्थ है ? हमारी शक्ति उस सर्वेशको विवश नहीं कर सकती और न हमारा त्याग उसके मिलनेका मूल्य बन सकता है। अवश्य ही हमारा प्रेम उसे विवश कर सकता है। वह प्रेम न हो तो उसीसे माँगते रहिये और उसकी कृपाकी प्रतीक्षा कीजिये।

विवाह हुआ ?

मेरे एक परिचित थे। वे बहुत दुःखी थे उन्होंने पहले उत्साहमें आकर एक साधुसे दीक्षा ली थी। अब उस गुरुमें उन्हें बहुत दोष दीखते थे। जो मन्त्र और इष्ट गुरुने बताया था, उसमें उनकी निष्ठा प्रारम्भसे नहीं थी। केवल गुरुजीके आग्रह तथा संकोचसे कुछ दिन वह जप-ध्यान चला था। अब क्या किया जाय ? यह चिन्ता

उन्हें व्याकुल किये थी मैं उन्हें लेकर एक महात्मासे पास गया।

'तू अच्छा आया।' प्रणाम करके बैठते ही वे संत बोले—'एक उलझन आगयी है। बता तो सही कि क्या करना चाहिये ?'

मैं स्वयं एक उलझन लेकर गया था, किन्तु वे अपनी सुनाने लगे—'एक लड़कीका व्याह होगया। बड़े-बड़े पण्डित आये थे बारातमें। बड़े विधि-विधानसे उसका व्याह हुआ। अब उस कन्याका पिता पूछता है कि उसका दूसरा व्याह हो सकता है या नहीं ?'

'दूसरा व्याह ?' मैं चौंका—'क्या पहला पति मर गया ?'

'मरा तो नहीं, किन्तु व्याह होनेके बाद पता लगा कि वह तो लड़का नहीं, लड़की है।'

तब व्याह क्या हुआ। 'मेरे साथ के सज्जन बोले—'वह तो अभी कुमारी है। 'गुरुने इष्ट नहीं दिया, मन्त्र नहीं दिया—दिया केवल एक इष्टाभास' महात्मा बोले—'बेचारी निष्ठाका विवाह कहाँ हुआ ?'

उत्तम शिष्य

'तुम अपने पिताको जानते हो ?' देवर्षि नारदने प्रजापति दक्षके पुत्रोंसे पूछा—'उनकी आज्ञाका तात्पर्य भी समझते हो तुम ?'

देवर्षिने खड़ाऊँ खटकाई, चुटिया फहराई और वीणाके तारोंपर अंगुली चलाते 'नारायण गोविन्द हरि' गाते चल खड़े हुए। अपने प्रश्नका उत्तर सुननेकी भी उन्होंने अपेक्षा नहीं की।

दक्षने अपने पुत्रोंको सृष्टि-विस्तारकी आज्ञा दी थी और वे सब भाई पिताकी आज्ञासे सृष्टि कर्मके लिए उचित शक्ति प्राप्त करने तपोवन जा रहे थे। उन्हें ये नारदजी बीचमें ही मिल गये थे।

'पिता तो शास्त्र ही है सबका !' उन सृष्टिकी आदिमें उत्पन्न हुए परम सत्वगुणी प्रजापतिके पुत्रोंने एक दूसरेकी ओर देखा और बोले—'शास्त्रके आदेशोंका परम तात्पर्य तो निवृत्ति है; क्योंकि संसारके राग-द्वेषसे मुक्त होकर परमात्माको प्राप्त करना ही जीवका परम पुरुषार्थ शास्त्र बतलाता है।'

सृष्टि कर्मका संकल्प समाप्त होगया और वे सब भाई उसी दिनसे परमहंस होगये।

मध्यम शिष्य

'आप क्या साधन करते हैं ?'

'गुरुदेवने जो आदेश किया।'

'आपका विश्वास है कि आपका इससे उद्धार हो ही जायगा और यही सर्वश्रेष्ठ साधन है ?'

'श्रेष्ठ-कनिष्ठकी बात मैं जानता नहीं'—नम्रतापूर्वक उन्होंने कहा—'मेरे योग्य जो साधन गुरुदेवने समझा, उसीको मुझे बताया होगा और उद्धारकी चिन्ता मुझे नहीं है। उसका दायित्व तो गुरुदेवपर है।'

बहुत ही सीधे, श्रद्धालु थे वे। वैसे शास्त्रोंके प्रकाण्ड विद्वान थे। यदि वे तर्क करने या प्रमाण देनेपर उतर आते तो उनसे विजय पानेकी आशा नहीं की जा सकती थी। उनके गुरुदेव स्वयं इनके जैसे विद्वान नहीं थे। अवश्य ही शास्त्राध्ययन उन्होंने भी किया था और श्रद्धा करने योग्य महात्मा थे।

'आप शास्त्रका मर्म समझनेवाले तो विद्वान हैं—उनसे पूछा गया—'आप स्वयं भी तो अपने साधनके महत्वको जानते होंगे।'

'मैं तो अबोध बालक हूँ। शास्त्रके वनमें भटक जाऊँगा'—हँसकर वे बोले—'अंगुली गुरुदेवने पकड़ ली है। अब चिन्ता वे करें।'

अधम शिष्य

'यह अघोरी है और आप इसे अपनी कुटियामें ले जा रहे हैं?'

'अभी तो यह एक रोगी मात्र है'—वृद्ध साधुने कहा—'इस समय इसे सेवा की आवश्यकता है। कुटिया,

वस्त्र और शरीर भी गंगाजलसे शुद्ध हो जायगा; किन्तु एक रोगार्तकी उपेक्षा कर दूँ तो चित्तको कैसे शुद्ध करूँगा ?'

वे वैष्णव साधु हैं। पक्के आचारनिष्ठ हैं। जब भी कोई उन्हें छू देता है या बाजार जाते हैं, स्नान करके ही आसनपर बैठते हैं। आज वे एक युवक अघोरीको गोदमें जैसे-तैसे सड़कपरसे उठा लाये थे। वह युवक ज्वरमें मूर्छित है। उसके पूरे शरीरमें चेचक निकल रही है। साधुने लाकर उसे अपने आसनपर सुलाया और परिचर्यामें लग गये।

'गुरुदेव !' होशमें आनेपर युवकने साधुको देखा और उठने लगा। वह क्रन्दनकर उठा—'मैं अधम हूँ, भ्रष्ट हूँ, पापी·······यह युवक कभी इनका ही शिष्य था; किन्तु सिद्धिका प्रलोभन उसे एक अघोरीके पास ले गया था।

'बच्चे !' साधु स्नेहपूर्ण स्वरमें बोले—'तुम शान्तिसे पड़े रहो। अज्ञान ही न हो तो कोई गुरुकी शरण क्यों ले ? क्या हुआ जो तुम कुछ दिन भटके रह गये।'

बीज भुने हैं

'आप आज कोई फूल लगाने वाले हैं ?' बाबाजी एक क्यारीको खोदने, खाद देनेमें बड़ी लगनसे जुटे थे।

साधुका ठाकुर-सेवाके लिये तुलसी-पुष्पकी ही चिन्ता सबसे अधिक रहती है।

'कल एक भक्त थोड़े चने दे गया है!' बाबाजीने कहा—'उन्हें यहाँ बो दूँगा तो उगनेपर शाक मिल जायगा।'

आसपास खेत हैं और चनेका शाक तोड़नेसे तो कोई हानि किसानको होती नहीं। पौदा उलटे अधिक फैलता है। लेकिन साधुकी मौज, मैं कह भी क्या सकता था। उन्होंने क्यारीकी मिट्टी मसलकर आटे जैसी कर डाली और भली प्रकार खाद मिलाकर तब चना ले आये।

'महाराज, ये बीज उगेंगे नहीं!' मुझसे चुप नहीं रहा गया।

'क्यों?' वे बोले—'मेरी क्यारीमें नमी है, खाद है और घासका एक तिनका भी नहीं है।'

'सो तो सब है, किन्तु ये भुने हुए चने जो हैं!' मैंने कहा।

'तो भुन जानेपर चना उगता नहीं। शायद सड़कर निःसत्व होनेपर भी नहीं।' वे वहीं भूमिपर बैठ गये और बोले—'तब चित्तमें जो संस्कारोंके बीज हैं उन्हें भक्तिकी आगमें भून दो, जन्म-मरण समाप्त, लेकिन उपासनाकी दीक्षा सड़े बीजकी नहीं सप्राण बीजकी लेना।

❖

सामान्य शिष्य

'मैं पूजा ही क्यों करूँ ? पूजाकी अपेक्षा ध्यान श्रेष्ठ है !' शिष्य ने पूजा छोड़ी नहीं थी, किन्तु उसके मनमें विकल्प उठ खड़ा हुआ था। वह गुरुदेवके समीप अपनी जिज्ञासा लेकर आया था।

'ठीक है, तुम कल पूजा मत करना।' गुरुदेव गम्भीर होगये—'तुम्हारा मन करे, तो भी मत करना ! मेरी आज्ञा है यह और ध्यान तो तुम अब भी करते ही हो। इसे जितना सम्भव हो बढ़ाओ।'

'भगवन् ! पता नहीं कैसी बेचैनी होरही है पूजा किये बिना।' दूसरे दिन शिष्य फिर गुरुदेवके पास आया। 'ध्यान में मन नहीं लगता।'

'नहीं, पूजा तो नहीं करनी है।' गुरु इतना कहकर मौन होगये। थोड़ी देर बैठकर शिष्य चला गया।

'पूजा किये बिना जल भी मेरे गलेसे नीचे नहीं उतरता। आप मुझे पूजा करने दें।' अत्यन्त व्याकुल था शिष्य। वह रो रहा था। दिन भर उसने निर्जल व्रत किया था।

'पगले ! तेरे लिए क्या श्रेष्ठ है, यह मैं जानता हूँ।' गुरुदेव स्नेह पूर्वक बोले—'जा पूजाकर और श्रेष्ठ-कनिष्ठके चिन्तनसे चित्त मत खराब किया कर।'

त्रिविध गुरु

'गुरु तीन प्रकार के होते हैं !' --उस दिन उस मस्त मौला महात्माने अपने आप कहा। वे थे ही ऐसे अद्भुत कि सामान्य प्रसन्न हों तो हँसें और अधिक प्रसन्न हों तो गाली दें। कुछ पूछने पर कदाचित ही उत्तर देते थे। उस दिन मैं उनके पास गया तो अपने आप कहने लगे— 'पत्थर, लक्कड़, फक्कड़ ! समझा कुछ।'

मैं इसमें भला क्या समझ सकता था। लेकिन कृपा करके उन्होंने उस दिन समझाया मुझे।

'जो स्वयं भी डूबे और शिष्यको भी साथ लेता जाय, वह पत्थर-गुरु !'

'जिसके मन्त्र और उपदेश का सहारा लेकर शिष्य अपनी श्रद्धा-साधनके बलसे पार हो सकता हो, वह लक्कड़ गुरु।'

'जो यों पार कर दे'—उन्होंने चुटकी बजाकर बताया—'वह फक्कड़-गुरु।'

इतना कहकर वे उठे और एक ओर चल पड़े।

सिद्ध गुरु और अधिकारी शिष्य

'आपको ईश्वरका दर्शन हुआ है ?' प्रचण्ड तार्किक और अपनेको अनीश्वरवादी कहनेमें गर्वका अनुभव

करनेवाला नरेन्द्र पूछ रहा था; लेकिन स्वभावसे वह नम्र था। उसके स्वरमें उद्धतपना नहीं था।

'हाँ, हुआ है।' बड़ा स्थिर, गम्भीर उत्तर मिला। ऐसा उत्तर, जिसमें न दम्भकी छाया थी और न अहंकारका लेश।

'अच्छा !' नरेन्द्र एक बार हतप्रभ होगया। उसे ऐसे उत्तरकी आशा नहीं थी। लेकिन क्षण भरमें उसने सिर उठाया।—'आप मुझे ईश्वरका दर्शन करा सकते हैं।'

'अवश्य !' दो ज्योतिर्मय नेत्र स्थिर होगये नरेन्द्रके मुखपर।

'कब ?' अब स्वरमें आश्चर्य आगया था।

'कब ?' अब स्वरमें आश्चर्य आगया था।

'आज, अभी।' नरेन्द्रके सिरपर एक हाथ जा पहुँचा और दो क्षणमें नरेन्द्र समाधि दशामें पहुँच गया।

यही नरेन्द्र आगे चलकर स्वामी विवेकानन्दके नामसे प्रसिद्ध हुए और अब मस्तकपर हाथ रखने वाले कौन थे, यह आप जान गये हैं। वे थे परमहंस श्रीरामकृष्ण।

❖

संत कैसे मिलें ?

श्रद्धेय श्रीस्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वती महाराजने वृन्दावनसे प्रयाग पैदल-यात्राका निश्चय किया था, उस बार प्रयागके पिछले कुम्भके अवसरकी ही बात है। कुम्भसे कुछ पूर्व ही वे वृन्दावनसे चल पड़े थे। साथमें कुछ और साधु-ब्रह्मचारी भी थे।

मार्गमें एक ग्राममें एक सम्पन्न व्यक्तिने बड़े उत्साहसे स्वागत सत्कार किया। वह सर्वदा अपरिचित था और उसकी श्रद्धा तथा सेवा-तत्परता विस्मित करने वाली थी।

स्वामीजीने उस गृहस्थसे पूछा—'भाई, तुममें यह साधु-सेवाकी भावना कैसे आयी ?'

उसने बताया—'एक संतकी कृपासे। मैंने उनसे पूछा था कि सच्चे सन्त घर बैठे कैसे मिलें ?'

संतने कहा—'भैया ! यदि चाहते हो कि हंस आँगनमें आवे तो पक्षियोंके लिए दाना डालना प्रारम्भ करदो। यह समझलो कि कौए ही पहिले आवेंगे और वही अधिक आवेंगे। पंडूक, कबूतर तथा दूसरे पक्षी भी आवेंगे; किन्तु यदि तुम ऊब न गये और दाना डालते रहे तो किसी दिन जब कोई हंस इधरसे उड़ता निकलेगा, पक्षियों-की भीड़ देखकर अवश्य तुम्हारे आँगनमें उतर आवेगा।'

उस गृहस्थने भरे कण्ठसे कहा—'मैंने तभीसे चाहे जैसाभी साधु आवे, उसे रूखी-रूखी जो बने देनेका

नियम कर लिया। संतकी बात सच्ची निकली। आज मेरे आँगनमें हंस आखिर आ ही गया है।'

जब चौदह सौ वर्षीय योगीराज— चौदह वर्षीय बालक के शिष्य बने !

चौदह सौ वर्षोंकी दीर्घकालीन आयु वाले योगीराज चाँगदेवने अपने शिष्योंसे संत-ज्ञानेश्वरके आध्यात्मिक ज्ञान एवं चमत्कारकी अनेक चर्चाएँ सुनीं। उनके मनमें उस परम ज्ञानी बालकसे मिलनेकी उत्कंठा जागृत हुई। एक योग्य शिष्यको उन्होंने संत ज्ञानेश्वरके पास पत्र लिखकर भेजा; किन्तु उसमें कोई सम्मान सूचक सिरनामा या संबोधन नहीं लिखा। चौदहसौ वर्षोंका योगिराज, एक चौदह वर्षके नन्हें बालकका सम्मान कैसे कर सकता था ?

योगाभिमानी चाँगदेवके कोरेपनाको देखकर मुक्ताबाईने कहा—'यह बाहर भीतर दोनों ओरसे कोरे ही हैं, भैया !'

'किन्तु उन योगीराजका स्वागत उन्हींके अनुकूल होना चाहिये'—निवृत्तिनाथ बोले।

'निश्चय ही, योगीराज चाँगदेवका हम वैसा ही स्वागत करेंगे'—संत ज्ञानेश्वरने कहा।

एक विशालकाय भयंकर सिंहपर आरूढ़ चाँगदेवने अपनी शिष्य मंडली सहित निश्चित तिथिको प्रस्थान किया। संत ज्ञानेश्वरको उनके इस प्रकार आगमनकी सूचना मिली। उस समय वे अपनी बहन और भाइयोंके सहितएक दीवारपर बैठे सत्संग-चर्चा कर रहे थे। सामनेसे सिंहारूढ़ योगी चाँगदेवको एक विशाल समुदाय सहित आते देख संत ज्ञानेश्वरने जड़-दीवार को आज्ञा दी—'चलो ! उन योगीश्वरका स्वागत करना है।'

सर्वशक्तिमान प्रभुके नित्यावतार संत भगवानकी आज्ञासे वह दीवार एक चैतन्य-वाहक बनकर आकाश मार्गमें उड़ चली। योगाभिमानी महावयोवृद्ध चाँगदेव 'जड़हिं करैं चैतन्य' की बात अपनी खुली आँखोंसे चरितार्थ देख विस्मयाभिभूत होगये। 'मैं तो इस चेतन सिंहको ही अपने वशवर्ती देखकर अभिमान करा रहा था और ये तो जड़ दीवारको भी चैतन्य बना देनेवाले परमसिद्ध हैं !' चाँगदेवका अभिमान गलित होगया। सिंहसे उतरकर उस महान योगीने उस संत बालकके चरणोंमें शिष्य-मंडली सहित प्रणिपात किया।

उसी दिन वे चौदह सौ वर्षों वाले वयोवृद्ध महान योगी चाँगदेव, केवल चौदह वर्षकी आयु वाले बालक ज्ञानेश्वरके शिष्य बन गये।

❖

आप अमर हैं ?

मुञ्जने गद्दीपर अधिकार पा लिया था; क्योंकि उसका भतीजा भोज जो राज्यका वास्तविक अधिकारी था, शिशु था।

पूरे शासनाधिकारको प्राप्त करते ही मुञ्जके मनमें पाप आया। 'क्यों वह अपने तथा अपने वंशधरोंके लिए राज्याधिकार सुरक्षित न करले।' बालक भोजको उसने बधिकके हाथमें दिया—'इसे वनमें ले जाकर समाप्त कर दो!'

मन्त्री बुद्धिमान था। जानता था कि मुञ्ज बुरा नहीं है। यह पापवृत्ति क्षणिक है। उसने बधिकको कुछ समझा दिया और बालक भोजको घर लेगया।

बधिक जब वनसे लौटा, उसने मुञ्जके सामने अपने कर्मका प्रमाण देनेके लिये मृगशावकके एक जोड़े नेत्र धर दिये। साथ ही एक ताल-पत्रका टुकड़ा दे दिया हाथमें।

ताल-पत्रपर रक्तके अक्षुरोंमें लिखा था—'चाचाजी! पृथु, हिरण्यकशिपु, रावण, दिलीप, रघु आदि बहुत चक्रवर्ती राजा हुए; किन्तु पृथ्वी किसीकी हुई नहीं। सब इसे छोड़कर मर गये। लगता है, आप अमर हैं, तभी तो इस नन्हें राज्यके लिए...... ....'

मुञ्जके हाथसे तालपत्र छूट गया। नेत्रोंके आगे अन्धकार छागया। वह पश्चातापके मारे मर गया होता, यदि मन्त्रीने बालक भोजको उसके सामने उपस्थित न किया होता।

कितना अधर्म, छल कपट है आजके जीवनमें ! यह पाप किस लिए ? कभी सोचा आपने कि क्या आप अमर हैं ?

वह प्रबन्धकर्ता

'कल्याण' के सम्पादक श्रीभाईजी (श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) प्रायः यह घटना सुनाया करते हैं—

उस समय सम्पादक-विभाग श्रीगोरखनाथ मन्दिरकी ओर एक बगीचीमें था। वहाँ कोई सवारी मिलती नहीं थी। नगरसे लगभग तीन-चार मील कच्चा मार्ग था वहाँ तक।

श्रीकृष्णकान्त मालवीयजीका तार आया कि उनका एक जेलसे दूसरीमें परिवर्तन हो रहा है, गोरखपुर स्टेशनपर उनके लिए भोजन (पूड़ी-शाक) ट्रेनपर पहुंचा दिया जाय।

तार श्री भाईजीके नाम था और आया था प्रेस में। चाहिये यह था कि प्रेसके व्यवस्थापक पूड़ी-शाक बनवाकर स्टेशन भिजवा देते, किन्तु किसी व्यस्तताके कारण उनका ध्यान इधर गया नहीं। उन्होंने तार दूसरे पत्रोंके साथ श्री भाईजीके पास भिजवा दिया।

जब तार श्रीभाईजीको मिला—वे झुंझलाये भी और चिन्तित भी हुए। समय रह नहीं गया था कि पूड़ी

शाक बनवा लिया जाता और किसी प्रकार बन भी जाय तो सवारी ? नगर आकर कोई तांगा लेकर वहाँ जाय और वहाँसे स्टेशन पहुँचे—ट्रेनमें इतना समय नहीं था।

इतनेमें नगरके एक सुप्रतिष्ठित सज्जनका निजी तांगा पहुँचा। उसमें पूड़ी-शाक, मिठाई आदि पर्याप्त सामान था। उनके यहाँ कोई उत्सव था, उसका प्रसाद उन्होंने भेजा था। ज्यों-का-त्यों वही तांगा स्टेशन भेजा गया। श्रीकृष्णकान्तजीके साथ कई व्यक्ति थे—वह सामग्री सबको यथेष्ट हुई।

यहाँके प्रबन्धकर्ता जब अपनी व्यस्ततामें प्रमाद कर गये—वह प्रबन्धकर्ता जागरूक था और उसका संकल्प तार पहुंचनेके भी पूर्वसे प्रबन्ध कर रहा था।

आप आस्तिक हैं ?

'भागजा यहाँसे ! नास्तिक कहींका !' बड़े विकट होते हैं फक्कड़ साधु; इनका कुछ ठिकाना नहीं, किस बातपर रीझ जायँ और किस बातपर चिमटा उठालें। इस समय बेचारे सेठजीपर बाबा बिगड़ गया था और धूनीमें-से उसने चिमटा निकाल लिया था।

सेठ जी—मैं उनका नाम नहीं जानता। कुछ मोटा थुल-थुल शरीर, आप जितना समझते हैं, उससे पर्याप्त छोटी तौंद और पगड़ीके स्थानपर टोपी। उजला सफेद

कोट है, जिसमें सोनेके बटन लगे हैं। पर्याप्त सम्मानित नागरिक हैं नगरके और गिने-चुने धनिकोंमें हैं।

सेठ जी साधु-सेवी हैं, भजनानन्दी हैं। सबेरे उठकर डेढ़ घन्टे नियमित ठाकुर-सेवा करते हैं। आस-पास कोई अच्छे साधु-सन्त आजायँ तो उनके दर्शन करने अवश्य उपस्थित होते हैं। कोठीपर कोई-न-कोई महात्मा पधारते ही रहते हैं। कथा-सत्संग, कीर्तन कोठीमें प्रायः होता है। नगरमें कहीं हो, सेठजीका उसमें प्रमुख भाग रहेगा।

'उठा इस अपने गन्दे कूड़े को!' बाबाजीने उस टोकरीको ठोकर मारदी खड़े होकर, जिसे सेठजी बड़ी श्रद्धासे ले आये थे। फल, मेवे एवं मिठाइयोंसे भरी टोकरी लगभग लुढ़क पड़ी। सेठजीके साथ आये सेवकने लपककर टोकरीको उठा लिया।

'जा भाग जा!' बाबाका क्रोध शान्त नहीं हुआ था। यह भभूतिया लंगोटी धारी साधु अभी कल ही आया है। नगरके समीप इस पुराने मन्दिरके सामने कल शाम इसने यहाँ बट-वृक्षके नीचे धूनी लगायी। चिमटा, कमण्डल, मृगचर्म और कोपीन--इतनी पूँजी बाबाजीकी और शान इतनी कि सबेरे-सबेरे नगरके सबसे सम्मानित सेठकी भेंट ठुकरा कर उसपर चिमटा उठाये खड़े हैं?

'आ भगत! आ बैठ!' सेठजीने जब आकर प्रणाम किया था, तब तो बाबाजीने बड़े स्नेहसे बैठाया था और बैठनेपर पूछा था—'अपना व्यापार सचाईसे करता है न?'

'महाराज ! व्यापार तो व्यापार है।' सेठजीने तनिक दबे-स्वरमें कहा था—'आप समझो ! उसमें कुछ सच-झूँठके बिना काम कहाँ चलता है ?'

बाबाजी इतना सुनते ही उबल पड़े। सेठजी जब निराश अपनी कारमें बैठ गये लौटनेको तब आप बैठे यह कहते---'न भाग्यपर विश्वास, न भगवानकी दयापर ! विश्वास करेगा पापपर और आस्तिक बनता है !'

भला आप आस्तिक हैं, बाबाजी की रायमें !

योगीके संकल्पका चमत्कार

मेरे मित्रने प्रत्यक्ष देखी यह घटना सुनायी है—

ज्येष्ठके दिन थे या बैशाखके—स्मरण नहीं; किन्तु ग्रीष्म था और लू चल रही थी। वे काशीसे कुछ दूर मघईपुर ग्रामके बाहर आम्रोद्यानकी कुटीमें निवास करने वाले सन्त श्रीअविनाशजी महाराजके दर्शन करने गये थे। लोग उन्हें 'मघईपुरके बाबा' कहते थे। अब तो उनका शरीर नहीं है।

'लू चलने लगी, चलो कुटीके भीतर बैठें।' महाराजजीने सबसे कहा और पञ्चवटीके पाससे उठे। उस दिन वहाँ एक संन्यासी भी घूमते आ पहुँचे थे। उनसे भी महाराज-जीने कहा--'आओ संतों, आप भी कुटियामें चले आओ।'

'मैं छप्परके नीचे नहीं जाता हूँ।' उन संन्यासीने कुछ अकड़से कहा।

'देखो कोई कितना भी चिल्लावे, मैं जब तक न कहूँ, कुटियाका दरवाजा खोलना मत--' श्रीमहाराजजीने कुटियामें पहुँच कर अपने साथ आये लोगोंको द्वार बन्द कर लेनेकी आज्ञा दी। स्वयं अपने तख्तेपर ध्यानस्थ बैठ गये। दूसरे लोग नीचे चटाइयोंपर बैठे।

दो-तीन सेकेण्ड बीते होंगे, बाहर वर्षा प्रारम्भ हो गयी। उसपर झुलसाती लूमें पता नहीं कहाँसे बादल आया और धड़ाधड़ ओले पड़ने लगे।

'खोलो! जल्दी दरवाजा खोलो?' वे सन्यासी जो बाहर रह गये थे, द्वार पीट रहे थे। ओलोंकी मारसे वे व्याकुल हो उठे थे।

द्वार जब खुला और वे भीतर आगये, तत्काल ओले और वर्षा पड़ना बन्द होगये। पीछे देखा गया कि वर्षा तथा ओले कुल दो बीघे भूमिमें पड़े हैं।

'साधु होकर दम्भ! कल रात…ग्राममें मल्लाहकी झोंपड़ीमें सोया था और आज छप्परके नीचे न जानेकी शेखी!' महाराजजी उन्हें डाँट रहे थे और वे चरणोंपर गिरे क्षमा माँग रहे थे।

❖

साधुका संकल्प शुभ ही होता है

मेरे एक मित्र काशीके (अब दिवंगत) बाबा श्री गुलाबचन्दजी औधड़के दर्शन करने कभी-कभी जाया करते थे। किसीने बाबासे उनकी कोई शिकायत की और जब वे बाबाके दर्शन करने उसके बाद पहुँचे तो बाबा रुद्रमूर्ति हो उठे। औघड़ जब क्रुद्ध हो तो उसका स्वरूप देवताओंके लिए भी भयप्रद होता है।

'आप तो मेरे एक दोषको सुनकर क्रुद्ध होगये' मेरे मित्रने किसी प्रकार नम्रता पूर्वक कहा--'मैं तो दोषोंका भण्डार हूँ और उनसे त्राण पानेकी आशामें ही संतोंके चरणोंके दर्शन करने आता हूँ।'

जैसे प्रज्वलित अग्निपर घड़े भर जल नहीं, गंगाकी पूरी धारा गिर पड़ी हो आकाशसे ! बाबाजीका क्रोध पता नहीं क्या हुआ। वे लिपट पड़े उनसे और रोने लगे फूट-फूट कर, बड़ी देर तक भाव-विह्वल बने रहे वे।

'देख रे ! साधुके पास अशुभ नहीं होता। जिसके पास जो है नहीं, वह उसे देगा कहाँसे।' आश्वस्त होनेपर स्नेह पूर्वक उन्हें समीप बैठाकर बाबाजी बोले--'साधु यदि सचमुच साधु है तो उसमें किसीका अमंगल करनेकी शक्ति रह ही नहीं गयी है। उसके संकल्पसे शुभ ही होता है। वह क्रोध करके शाप भी देगा, तब भी उस शापसे शापित प्राणीका मंगल ही होगा। भगवान साधुकी प्रत्येक क्रियाको मंगलप्रद बनानेके जिए बँधे हैं; क्योंकि साधु उनका अपना जो है।'

❖

दृढ़ संकल्पसे सुधार

जयपुरके एक सज्जन रुग्ण थे। वे वृद्ध थे और उनकी स्थिति चिकित्सासे बाहर हो चुकी थी। शरीर नश्वर है, वह तो जायगा ही उनके विवेक-शील पुत्रको इसकी चिन्ता नहीं थी; किन्तु चिन्ताकी बात यह थी कि उसके पिता इस मरण-कालके पास आकर बहुत चिड़चिड़े हो गये थे। भवन, सम्पत्ति तथा स्वजनोंके प्रति उनका मोह बढ़ गया, लगता था। जबकि जीवनके उत्तरार्धमें उन्होंने अपना बहुत-सा समय जप-ध्यान-पाठ तथा तीर्थाटनमें व्यतीत किया था।

उनके पुत्रको पता नहीं क्या सूझी—वह मुझे पत्र लिखने बैठ गया। उसके ये रुग्ण पिता प्रायः मुझसे पत्र-व्यवहार करते रहते थे और मैं अपनी बुद्धिके अनुसार उनके धार्मिक-अध्यात्मिक कहना चाहिये प्रश्नोंका उत्तर देनेका प्रयत्न करता था। यह बात उनके पुत्रको ज्ञात थी।

उनकी मृत्यु होगयी। मृत्युके भी कई मास बीत गये जब उनके वे पुत्र मुझे मिले। मिलनेपर उन्होंने बताया—'मुझे विश्वास था कि आपको पिताजीकी वर्तमान दशा लिख भेजनेसे उसमें सुधार हो जायगा। मेरी आशा सफल हुई। मैंने आपको पूरी बात लिखी और पत्र लेटरबक्समें डालकर लौटा तो पिताजीकी स्थिति बदल गयी थी। उनका चिड़चिड़ान मिट गया था। वे जप करते तथा कीर्तन सुनते परलोक पधारे।

'लेकिन आपका वह पत्र मुझे मिला नहीं—अब तक भी नहीं मिला।' उनका पत्र तो मार्गमें ही कहीं खोगया—पत्र मुझे मिलता भी तो क्या होता। काम तो उनके श्रद्धायुक्त संकल्पको करना था और वह कर चुका था।

संकल्पके अनुसार मृत्यु

'ऐसा कुछ कीजिये कि भगवन्नाम लेते मेरा शरीर छूटे।' लखनऊके श्रीमिट्ठनलाल अग्रवालने एक बार बड़े आग्रहसे मुझसे कहा था।

'आप दृढ़ संकल्प करलें कि भगवन्नाम लेते ही आपका शरीर छूटेगा।' मैंने उन्हें सम्भवतः यही शब्द कहे थे।

'मेरा संकल्प…… !' उन्होंने सन्देह किया।

'आपका संकल्प सत्य होकर रहेगा।' मैंने उन्हें प्रोत्साहन दिया, क्योंकि इससे अधिक कुछ मैं कर नहीं सकता था।

'मेरा शरीर भगवन्नाम लेते ही छूटेगा।' उनको विश्वास होगया उसी दिनसे, और सच्चा विश्वास किसी को कभी धोखा नहीं दिया करता।

वर्षों बीत गये उस बात को—

सोमवारका दिन था। मिट्ठनलालजी प्रातः स्नान करके अपने पूजाके कमरेमें पुष्पादि लेकर चले गये थे। सोमवारको वे शिवार्चन करते थे।

देर होगयी। घरके लोग घबड़ाये। अन्ततः उनके छोटे भाई पूजाके कक्षमें पहुँचे। पूजा सम्पूर्ण हो चुकी थी। आरती प्रदीप सामने बुझा रक्खा था। मिट्ठनलालजीके दाहिने हाथमें माला थी और उनका शरीर चौकीपर-से एक ओर कुछ लुढ़का-सा झुका था। वे महाप्रयाण कर चुके थे अपने आराध्यका पूजन करके सम्मुख नाम जप करते हुए।

तीर्थङ्कर महावीरका अतिमानव संङ्कल्प

'कोई कुमारी कन्या हो, उसके मस्तकके केश मुण्डित हों, द्वारके चोखटपर बैठी हो, प्रसन्न हो; किन्तु नेत्रोंमें अश्रु हों और उड़दके छिलकोंकी भिक्षा दे रही हो तो मैं भिक्षा ग्रहण करूँगा।' तीर्थङ्कर महावीरने अपने मनमें यह संकल्प किया था—ऐसा संकल्प जिसके पूरे होनेकी सम्भावना ही नहीं दिखती।

भिक्षाके समय नगरमें निकलते थे। मार्गमें भवन-द्वारोंपर दृष्टि डालते चलते जाते और लौट आते। श्रद्धालु नागरिक विविध पदार्थ लिये द्वारपर उपस्थित रहते; किन्तु जब वह लोकोत्तर तपस्वी चुपचाप निकल

जाता—उनके नेत्रोंसे बिन्दु गिरने लगते। वे कैसे जान सकते थे कि उनके पर-श्रद्धास्पदने क्या संकल्प किया है मनमें।

दिन बीतते गये। सप्ताह बीते, मास बीता। शरीर कृशसे कृशतर होता गया। नगरमें श्रद्धालुओंमें ही नहीं, स्वर्गके देवताओं तकमें चिन्ता और क्लेश व्याप्त होगया।

वह बालिका थी श्रद्धाकी मूर्ति; किन्तु विपत्तिकी मारी। माता परलोक पधार चुकी थीं। विमाताके अत्याचार नित्य बढ़ते जारहे थे। उसे विमाताने कई दिन भूखे-प्यासे एक कक्षमें बन्द रखा। मुक्त भी किया तो सिर घुटवा दिया और भोजनको दिये उड़दके छिलके। वे छिलके लिये वह भवनद्वारके चौखटपर आ बैठी। तीर्थङ्कर निकले उसी समय मार्गसे, बालिका उत्फुल्ल हो गयी; किन्तु वे आगे बढ़ चले और रो पड़ी वह। सहसा पीछे मुड़ कर देखा भाव प्राण तीर्थङ्करने—उनका संकल्प पूरा हो चुका था। लौटकर अपना भिक्षापात्र उन्होंने बालिकाके सम्मुख कर दिया।

उड़दके उन छिलकोंकी वह भिक्षा—पूरे उञ्चास दिनपर महा तापसने भिक्षा ग्रहणकी थी और आकशसे दिव्यपुष्प उस बालिकापर झर रहे थे। उसके जयनादसे दिशाएँ ध्वनित हो उठी थीं।

श्रेष्ठत्वका आधार

वाराणसी नरेश महाराज ब्रह्मदत्त बहुत ही धर्मात्मा थे। वे सदा इसके लिए सावधान रहते थे कि प्रजाको शासनाधिकारियोंकी ओरसे कोई कष्ट-असंतोष न हो। प्रजाका मनोभाव जाननेके लिए वे प्रायः नगरमें वेश बदलकर घूमा करते थे।

एक बार नरेशने सोचा—'नगरके लोग सन्तुष्ट हैं यह तो ठीक; किन्तु नगर ही तो पूरा राज्य नहीं है। राज्यके दूरस्थ प्रदेशोंकी प्रजा सन्तुष्ट हो, तव शासन सुशासन कहा जा सकेगा।'

राजधानीकी व्यवस्था आमात्योंको महाराजने सौंपी, राजपुरोहितको साथ ले लिया और वेश बदलकर राजधानीसे निकल पड़े। इस यात्रामें एक दिन वे एक दूरस्थ नगरकी धर्मशालामें ठहरे थे। उस नगरका श्रेष्ठी धर्मशालाकी ओरसे घूमता निकला। उसकी दृष्टि महाराज ब्रह्मदत्त पर पड़ी तो उसने सोचा—'यह स्वर्ण-गौर सुकुमार देह यात्री अवश्य किसी श्रेष्ठ कुल का है। यह तेजस्वी भी बहुत है।'

श्रेष्ठीके मनमें उस यात्रीका सत्कार करनेकी इच्छा हुई। उसने समीप जाकर प्रणाम किया और प्रार्थनाकी—'आप कुछ देर यहाँ विश्राम करें और मुझे यह सौभाग्य प्रदान करें कि आपके लिए भोजन ला सकूँ।'

महाराजने श्रेष्ठीकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। वे थके बहुत थे और वहाँ रुकना उन्हें अभीष्ट ही था। श्रेष्ठीके चले जाने पर उसी धर्मशालामें हिमालयमें तप करनेवाले एक तपस्वी भी आकर रुके और नन्दमूलक पर्वतसे एक ज्ञानी भिक्षु भी आगये।

श्रेष्ठी स्वादिष्ट व्यञ्जनोंसे सजा थाल सेवकके द्वारा उठवाये थोड़ी देरमें आगया। उसने भोजनका थाल महाराजके सम्मुख रख दिया। महाराजने वह थाल उठाया और राजपुरोहितके सम्मुख रख दिया। राजपुरोहितने उसे तपस्वीको दिया। तपस्वीने भिक्षुके आगे थाल धरा। भिक्षुने कमण्डलुके जलसे हाथ धोया, आचमन किया और भोजन करने लगा। उसने किसीसे भी भोजन के लिए नहीं पूछा। पूरा भोजन वह स्वयं खागया और तब हाथ धोकर आसन पर बैठ गया।

'आप सुकुमार हैं, क्षुधित लगते हैं। आपने भोजनका त्याग क्यों किया?' श्रेष्ठीने महाराजसे पूछा।

'श्रमिकसे व्यवसायी श्रेष्ठ होता है और व्यापारीसे प्रशासक; किन्तु धर्ममें लगा शास्त्रज्ञ ब्राह्मण शासकसे श्रेष्ठ है'—महाराजने कहा—'मेरे साथ ये शास्त्रज्ञ धर्मात्मा मेरे पूज्य ब्रह्मदेव हैं, उनको भोजन पहले मिलना चाहिये!'

'शास्त्रज्ञान और धर्माचरणसे त्याग श्रेष्ठ हैं'—श्रेष्ठीके पूछने पर राजपुरोहित बोले—'तपस्वीके भूखे रहते मेरा भोजन करना अनुचित होता!'

'स्वादिष्ट पदार्थ तपस्वीके लिए त्याज्य हैं'—तपस्वीने बताया—'दूसरे मैं साधक हूँ। जो इन्द्रियजयी ज्ञान-सम्पन्न हैं, वे मुझसे श्रेष्ठ हैं। उन्हें भोजन देना मेरा कर्त्तव्य था।'

'मुझे भोजनकी आवश्यकता थी' भिक्षुने कहा—'सुस्वादु-कुस्वादु पर मेरी दृष्टि नहीं जाती। अन्य अपनेसे भिन्न नहीं, अतः अन्यके चिन्तन-चिन्ताका प्रश्न ही मेरे लिए नहीं उठता।'

विपत्तिके समय क्या करना चाहिये ?

बोधिसत्त्व उस समय गजराजके शरीरमें थे। वे एक विशाल हाथियोंके दलके यूथपति थे। यह दल मृगारण्यमें निवास करता था।

ग्रीष्मकालमें सहसा बोधिसत्त्वने खड़े होकर चिघाड़मारी उन्हें अपने यूथके अन्य गजोंसे पूर्व ही अग्निके द्वारा बन जलनेकी गन्ध आ चुकी थी। लेकिन देर होगयी थी। यह गजयूथ जिस भागमें था, उससे कुछ दूरमें दावाग्नि लगी थी और दुर्भाग्यसे वायु ऐसी चल रही थी कि अग्निकी गन्ध तब मिली जब वह प्रायः पूरे वनको घेर चुका था।

कुछ क्षणोंमें तो पूरे वनमें आतंकका राज होगया। सिंह, व्याघ्र, मृग, शशक, कपि, रीछ, सर्प आदि सब

प्राणी इधरसे उधर दौड़ने-भागने लगे इस संकटकाल में कोई किसी का शत्रु नहीं था। किसीको अवकाश नहीं था कि वह दूसरेके आखेटकी बात भी सोचे। सिंह और मृग प्राय: साथ भाग रहे थे।

हाथियोंका यूथ भी भागा। कोई किसी ओर, कोई किसी और दूसरे प्राणियोंके समान वे भी चिल्ला रहे थे। बहुतसे क्षुद्र प्राणी इन भागते-दौड़ते हाथियोंके पैरोंके नीचे कुचल गये। बोधिसत्त्वने यह सब देखा और अपने यूथके हाथियोंसे बोले—इस वनको अग्नि घेर चुका है। जब मरना ही है तो शान्त, स्थिर होकर मरेंगे। कायरोंके समान भागनेसे क्या लाभ ?'

ऐसे अवसर पर कौन किसकी सुनता है ? लेकिन कुछ हथिनियाँ और कलभ (बच्चे) बोधिसत्त्वके पास खड़े रहे। इतनेमें बोधिसत्त्वने देखा कि उनके पैरोंके पाससे छोटा कछुआ एक ओर सरका जा रहा है। उन्होंने पूछा—कछुए भाई !' अग्नि तो चारों दिशा घेर चुका है, तुम कहाँ जाना चाहते हो ?'

कछुआ वाला—'मैं जलचर हूँ। मुझे जलाशयकी गन्ध आती है। मैं सीधे झीलकी ओर जारहा हूँ। मरना ही है तो अग्निको पार करनेका प्रयत्न करते मरूँगा।'

'तुम मेरे मस्तक पर बैठो और मार्ग बतलाओ' बोधिसत्त्वने कछुएको उठाकर सिरपर रख लिया। यह दल दावाग्निके घेरेसे निकल कर झीलके पानीमें पहुँच गया, यद्यपि अग्नि पार करनेमें सभी थोड़ा झुलस

गये थे। विपत्तिके सहचर धैर्य एवं साहसने उन्हें बचा लिया।

एक भिक्षुणीके संकल्पने लाख लाख प्राण बचाये

भगवान बुद्ध आज बहुत गम्भीर थे। राजपुरुष, कोषाध्यक्ष, नगर सेठ, महागणाध्यक्ष आदि सभी उदास हतश्री, सचिन्त सिर झुकाये बैठे थे उनके सम्मुख जैसे पूरे कमल वनपर तुषारपात हो चुका हो।

'एक बूंद जल नहीं दिया इस वर्ष आकाशने। पिछले तीन वर्षोंसे अकाल चल रहा है। जन सामान्य आज क्षुधार्त्त है। उसे कौन अन्न देगा? अगली फसल होनेतक कौन देगा अन्न?'

लेकिन तथागतके आह्वानका उत्तर कहींसे नहीं आया। उन्होंने जिसकी ओर देखा, उसीका मस्तक झुक गया। एक ही उत्तर था 'अत्यल्प शक्ति है यह जन।'

तथागतने दीर्घश्वास ली और आकाशकी ओर देखा उनकी मुद्रा अत्यन्त करुण थी। सहसा सुनायी पड़ा—'यदि प्रभु आदेश दें, यह भिक्षुणी इस सेवाका भार उठा लेगी।'

तथागतके नेत्र उत्फुल हो उठे। सामने अनाथ पिण्डद्की कन्या हाथमें भिक्षापत्र लिये अपनी फटी साड़ीमें भी साक्षात् अन्नपूर्णाके समान खड़ी थी।

'तू ! कैसे करेगी वह ? तेरे पास धरा क्या है ?' चारों ओरसे झुँझलाहटके स्वर आने लगे।

'भाइयो ! आप रुष्ट न हो !' शान्त थी वह भिक्षुणी 'मेरे पास आप सबकी दया, उदारता एवं दानशीलताका विश्वास है। आपकी उदारता मेरे भिक्षापात्रको अक्षय बना देगी।'

सचमुच उस भिक्षुणीका भिक्षपात्र अक्षय बन गया। उसके संकल्पने लाखों प्राण बचाये।

अभय क्या ? भय क्या ?

नन्हेंसे जापानपर विशाल रूसने—आजके सोवियत रूसने नहीं—जारशाही रूसने आक्रमणकर दिया था। अपने महान देशकी रक्षाके लिए जापानी प्राणोंपर खेलकर लड़ रहे थे। उसी युद्धकी एक छोटीसी घटना।

एक जंगलोंसे ढकी छोटी पहाड़ीपर अधिकार करनेके लिए संग्राम चल रहा था। पहाड़ीपर जापानकी एक विशाल तोप लगी थी। उसकी मारके आगे शत्रुके पद बढ़ नहीं पाते थे; किन्तु संख्या-बल भी कुछ होता है।

शत्रुने पहाड़ीपर घेरा डाल दिया था। पीछेसे सहायता आना सम्भव नहीं रह गया था।

पहाड़ीपर जो थोड़ेसे जापानी सैनिक थे, उनके समीपका गोला-बारूद समाप्त होनेको आगया। नायकने स्थान छोड़ देनेका निश्चय किया। एक सकरा जंगली मार्ग रह गया था उनके निकल जानेका। कुछ घण्टोंमें वह भी बन्द हो जानेवाला था। वे जो कुछ ले जा सकते थे, ले गये। शेषमें जो नष्ट किया जा सका, कर गये।

एक घायल सैनिक पहाड़ीपर छूट गया। शीघ्रतामें उसके साथी यह नहीं जान सके कि वह वनमें मूर्छित पड़ा है। पता लगानेका समय नहीं था। वह उठा, उसने घूमकर सब देखा—और तो सब ठीक, किन्तु बड़ी तोप वहीं थी। वह न नष्ट की जा सकी और न हटायी जा सकी। शत्रुके हाथ यदि वह पड़ी……? अकेला सैनिक क्या करे? अन्तमें कुछ सोचकर वह तोपके मुखमें घुसा और उसकी भारी नालमें घुसता चला गया। यह था अभय! प्रेम अभय होता है। राष्ट्रका सच्चा प्रेम उसे अभय कर चुका था।

शत्रुने कुछ घण्टोंमें पहाड़ीपर अधिकारकर लिया। उस भारी तोपको देखकर उनके हर्षका पार नहीं। इतनी बड़ी तोप वे जहाजसे यहाँ नहीं ला सकते थे। तत्काल प्रयोग करके तोपकी शक्ति देखनेका निश्चय हुआ। उसमें गोला-बारूद भरा गया, पलीता लगा। सब सैनिक

उत्साहसे खड़े थे। यह क्या ? तोप छूटी और सामनेका वृक्ष रक्तसे लाल होगया। तोप तो रक्त उगल रही है !

बहुत अन्धविश्वास था तब रूसमें भी। उन सैनिकोंको लगा जापानी कोई जादू-टोना करके तोप यहाँ छोड़ गये हैं। तोपके साथ वह पहाड़ी भी उस समय त्यागकर वे लोग दूर चले गये। यह था भय—मोह भय है और मोह अज्ञानसे होता है।

वह जानता तो है !

प्रत्येक धर्मकी अपनी कुछ न कुछ विशेषता होती है। जैन धर्मने अद्भुत तपस्वी उत्पन्न किये हैं और इस्लामने अद्भुत विश्वासी। बात एक ऐसे ही विश्वासीकी है जो अपनी तपस्यामें भी अद्भुत ही था।

फकीर था वह—लगभग अस्सी वर्षका बुड्ढ़ा फकीर। जिस शिलापर वह नमाज पढ़ा करता था, उसपर उस स्थानपर गड्ढा बन गया था छोटा सा, जहाँ वह सिजदा करते समय सिर रखता था।

सफेद दाढ़ी, झुर्री पड़ा बदन, काँपते हाथ पैर। वर्षोंसे वह इस जगहसे कहीं नहीं गया। नखलिस्तानके दूसरे डेरेवाले अरब उसे जो कुछ खजूर तथा ऊँटनीका दूध दे देते हैं, उसकी छोटी जानके लिए वह बहुत काफी है।

लगभग पूरी उमर नमाजमें गुजार देनेवाले इस बूढ़े फकीरसे मजाक करनेकी बात एक दिन एक फरिश्तेके मनमें आगयी। बूढ़ेने जो शामकी नमाज अदा करके सिर उठाया तो देखा उसके सामने चमकते पंखोंवाला एक फरिश्ता खड़ा है।

'बेवकूफ बुड्ढे!' फरिश्तेने अद्भुत ढंगसे कहा—'तू नाहक इतने दिनोंसे परेशान हो रहा है। तेरा कोई सिजदा तेरी कोई नमाज खुदाको कबूल नहीं।'

'या खुदा! तेरा रहम मेरे मालिक!' बुड्ढा तो जैसे पागल होगया। खुशीके मारे उसने फरिश्तेके दामन चूमे और उसके कदमोंमें इतने बोसे लिये कि फरिश्ता परेशान होगया।'

'मगर तू इतना खुश क्यों हो रहा है?' फरिश्तेने आखिर पूछा।

'मेरे मालिकको इतना पता तो है कि एक नाचीज उसे सिजदा करता है!' बुड्ढेकी खुशीका पार नहीं था।

फरिश्तेकी आँखें देख सकती थीं और उसने देख लिया कि उस बुड्ढे फकीरपर खुदाका जलवा रोशन होगया और तब फरिश्ता खुद उसकी कदम बोसीको झुक चुका था।

अपना ज्ञान

विख्यात संत इमाम गिजाली धर्म-ग्रन्थके अध्ययनमें पूरी रात बिता देते थे उनके पास रातभर एक नन्हासा दीपक जलता रहता था।

एक दिन पढ़ते पढ़ते झपकी लग गयी। स्वप्नमें उन्होंने देखा कि एक देवदूत आया है और कहता है—'गिजाली, उठ! मैं तुझे सम्पूर्ण विद्याएँ सिखाने आया हूँ। इसके बाद तुझे रातभर जागना नहीं पड़ेगा।'

दूसरा कोई होता तो खुश हो जाता; किन्तु स्वप्नमें ही गिजालीने कहा—'ख्वाजा साहब! वेअदबी माफ करें; किन्तु परिश्रम किये बिना पुरस्कार मुझे नहीं चाहिये। सब विद्याएँ पढ़ने-सीखने जितनी शक्ति सामर्थ्य मुझमें है भी नहीं। पुरुषार्थके बिना मिली सिद्धि मुझे नगण्य लगती है। मुझे तो इन ग्रन्थोंको पढ़कर धीरे-धीरे जो ज्ञान मिले, वही पाना है। वह ज्ञान मेरा अपना होगा।'

'तब तुम्हारे मनमें आवे वह माँग लो।' देवदूतने कहा।

गिजाली बोले—'आप ऐसे ही खुश हैं तो यह कीजिये कि मेरे इस दीपककी रोशनी और मेरे भीतरकी रोशनी कभी घटे नहीं। जिससे मेरी साधना कभी शिथिल न पड़े।'

❖

फरार कौन ?

न्यायाधीशके पदपर हेरिसकी नवीन नियुक्ति हुई थी। वह एक किसानका पुत्र था और कुछ दिन पादरी भी रह चुका था। उसकी विद्वत्ता, उदारता, सहृदायताकी प्रसिद्धिसे आकर्षित होकर सम्राटने उसे यह पद दिया था।

'श्रीमान्, रोमके शासन-विधानमें फरारके लिए बहुत कठोर दंड बताया गया है।' न्यायाधीश बननेके सातवें दिन हेरिस रोमके सम्राट् मार्क्स क्योरेलियसकी सेवामें उपस्थित हुआ और सम्राट्की अनुमति प्राप्त होनेपर उसने पूछा—लेकिन मैंने पूरा विधान देख लिया, उसमें फरारकी कोई भी परिभाषा नहींकी गयी है। फरार किसे माना जाय ?'

'जो अभियुक्त सरकारी बन्दीगृहसे भाग निकले।' सम्राटने कहा—'और जो दास अपने स्वामीके यहाँसे भाग जाय अपना कर्तव्य त्याग कर।'

'पहली परिभाषाके सम्बन्धमें कोई विकल्प नहीं हो सकता।' हेरिसने फिर प्रार्थनाकी—'किन्तु यदि सम्राट आज्ञा दें, दूसरी परिभाषाके सम्बन्धमें कुछ निवेदन करना चाहूँगा।'

'क्या कहना है तुम्हें ?' सम्राट्ने पूछा।

'हम सब परमात्माके दास हैं। दैवी विधान ही हम सबका स्वामी एवं नियन्ता है।' न्यायाधीश हेरिसने गम्भीरता पूर्वक कहा—'वे सब लोग जा अपने उचित

कर्तव्यका पालन नहीं करते, सदाचारकी मर्यादाको तोडते हैं, फरार माने जाने चाहिये। जो जीवनमें प्राप्त परिस्थितिसे सन्तुष्ट नहीं रहते, बेचैन और क्रुद्ध हैं, परिवार तथा दूसरोंसे रूठे हैं, उनसे बिगाड़ कर लेते हैं, कर्तव्य पालनसे भागते हैं, फरार ही कहे जायँगे।'

पूरी राजसभामें सन्नाटा छा गया। सम्राट् स्थिर दृष्टिसे न्यायाधीशकी ओर देख रहे थे। न्यायाधीश कह रहा था—'जो चाहते हैं कि यह घटना ऐसी न हो या न हुई होती तो अच्छा होता, वे दैवी विधानसे भागने वाले हैं। उन्हें फरार मानना चाहिये।'

'तुम ठीक कहते हो।' सम्राट्ने धीरेसे कहा--'देवी-विधान स्वयं इसका दण्ड देता है। ऐसे लोगोंको सुख-शान्ति प्राप्त नहीं होती। उनका जीवन असन्तुष्ट व्यतीत होता है। वे परमात्मासे दूर होकर अन्धकारमें जाते हैं।'

'हम सब ऐसी भूल कुछ-न-कुछ करते रहते हैं?' सम्राट्ने स्वीकार किया।

उसी दिन रोमके शासन विधानमें फरारकी परिभाषा राजकीय बन्दीगृहसे भागे व्यक्तिके लिए स्थिर कर दी गयी और सम्राट्ने कहा कि भागे हुए दासोंके लिए दंडका निश्चय करके उसे दंड संहितामें जोड़ दिया जायगा।

ना जानें किस वेशमें

वेगकी वर्षा हो रही थी। वायुके प्रबल झकोरे चल रहे थे। बिजलीकी तड़क बार-बार हो रही थी, ऐसे कुसमयमें रातको फिलडेल्फियाके एक छोटे होटलमें एक अधेड़ दम्पतिने प्रवेश किया।

'रात्रि बितानेको एक कमरा चाहिये।' काउण्टरपर जो व्यक्ति था, उससे आगत पुरुषने कहा।

क्लर्कने बतलाया—'यहाँ कहीं स्थान नहीं है। सब कमरे भरे हुए हैं।'

'हे भगवान !' पुरुषने लम्बी श्वास ली—'हम यहाँके सब होटलोंमें घूम आये हैं, कहीं स्थान मिलता नहीं है।'

इसी समय बड़ा भयंकर शब्द हुआ बिजलीकी चमकके बाद। डरकर स्त्रीने पतिका हाथ पकड़ लिया। होटलके क्लर्कने धीरेसे कहा—'यहाँका एक-एक कमरा भर चुका है; किन्तु ऐसी रात्रिमें आप जायँगे भी कहाँ। क्या आप दोनों मेरे कमरेमें रहना पसन्द करेंगे ?'

'और तुम ?'

'मेरी चिन्ता आप मत करें। मैं अपने आप अपनी निभा लूँगा। यहाँ कहीं मेजपर मैं सो सकता हूँ; किन्तु····।'

किन्तु क्या ?' यात्रीने पूछा ।

'मेरा कमरा बहुत छोटा है और बहुत साधारण बिछौना है उसमें । आपको वह रुचेगा ?'

'ओह !' आगत पुरुष तो क्लर्कके इस भावसे ही गद्गद् हो गया । वे दोनों रात्रिमें उस क्लर्कके कमरेमें सोये और क्लर्क रातमें मेजपर भोजन हालमें पड़ा रहा । सवेरे वे दम्पति विदा होगये ।

थोड़े दिनों पीछे उस क्लर्कके नाम एक पत्र आया । उस पत्रमें उसे न्यूयार्क आनेका निमन्त्रण था और वहाँका रिटर्न टिकट भी था ।

क्लर्क न्यूयार्क पहुँचा तब उसे पता लगा कि उस वर्षाकी रात्रिमें उसके होटलमें शरण लेनेवाले जिस व्यक्तिने उसे निमन्त्रित किया है वह व्यक्ति था अमेरिका का प्रसिद्ध न्यायाधीश विलियम वेल्फोर्ड आष्टो ।

मि० वेल्फोर्ड उस क्लर्कको अपने साथ न्यूयार्कके एक प्रधान मार्गपर ले गये । वहाँ पांचवें एवेन्यूके चौंतीसवें मार्गके मोड़पर विशाल राजभवन जैसा भवन खड़ा था । उसपर बोर्ड लगा था—वेल्फोर्ड आष्टोरिया होटल ।

मि० वेल्फोर्डने उस क्लर्कसे कहा—'यह होटल मैंने केवल तुम्हारे लिए बनवाया है । तुम आजसे इस होटलके मैंनेजर हो ।'

'मैं बहुत छोटे होटलका साधारण क्लर्क । इतना बड़ा दायित्व मैं सम्हाल नहीं………।'

'तुममें मनुष्यता है।' वेल्फोर्डने क्लर्कको होटलमें हाथ पकड़कर ले जाते हुए कहा—'बड़े से बड़े दायित्वको सम्हालनेके लिए इतना पर्याप्त है।'

सिद्धके लक्षण

परमहंस रामकृष्णसे किसीने पूछा—'सिद्धके क्या लक्षण हैं ?'

उन्होंने कहा—'जिस प्रकार चावल पक जानेपर नरम, कोमल, कण रहित, मृदु और अलग-अलग हो जाता है, इसी प्रकार साधकका हृदय जब साधनके द्वारा परिपक्व होकर विनय-मधुर, कोमल, निरभिमान और असंग होजाय, तब उसे सिद्ध कहते हैं।

"यह पुस्तक भारत सरकार द्वारा रियायती मूल्यपर उपलब्ध किये गये कागजपर मुद्रित-प्रकाशित है।"

श्रीकृष्ण-सन्देश

[आध्यात्मिक मासिक-पत्र]

श्रीकृष्ण-सन्देशका वर्ष जनवरीसे प्रारम्भ होता है। 'श्रीकृष्ण-सन्देश' प्रतिमास लगभग ७२ पृष्ठ पाठ्य-सामग्री देता है।

वार्षिक शुल्क	१० रुपये।
आजीवन शुल्क	१५१ रुपये।

सम्भव हो तो आजीवन ग्राहक बनें।

व्यवस्थापक—श्रीकृष्ण-सन्देश
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा-संस्थान
मथुरा—२८१००१

"यह पुस्तक भारत सरकार द्वारा रियायती मूल्यपर उपलब्ध किये गये कागजपर मुद्रित-प्रकाशित है।"